दिवंगत आर्य श्रेष्ठी

डा॰ धर्मपाल

वैदिक प्रकाशन

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

दिवंगत आर्य श्रेष्ठी

डॉ० धर्मपाल

वैदिक प्रकाशन
15, हनुमान रोड, नई दिल्ली-1
दूरभाष : 310150

प्रकाशक :

वैदिक प्रकाशन
15, हनुमान रोड़,
नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 310150

सम्पादक :डॉ० धर्मपाल

मूल्य : 5·00

प्रथम संस्करण

मुद्रक : ट्रिगल आर्ट कम्पोजिंग एजेन्सी, 185/13, कृष्णा गली-3, मौजपुर, दिल्ली-53

समर्पण

उन महानुभावों की स्मृति में सादर समर्पित
जिन्होंने वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के प्रचार
प्रसार के लिए अपना जीवन अर्पित किया।

सम्पादकीय

भारतवर्ष के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी का काल पुनर्जागरण काल के नाम से अभिहित किया जाता है। शताब्दियों से सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक पराधीनता की शृंखलाओं में जकड़े भारतीय जनमानस के अन्तर्मन में कुछ हलचल सी मचने लगी थी। राजनैतिक स्वाधीनता के लिए भारतीय जनमानस में कुलबुलाहट थी। सशस्त्र सेनाएं भी अनुभव करती थीं कि वे संभवत: विदेशी शासकों के हाथ खिलौना बनकर रह गए हैं और वे अपने ही लोगों का शोषण कर रहे हैं। उन पर अत्याचार कर रहे हैं। यही कारण था कि 1857 का प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध हुआ जिसे विद्रोह का नाम दिया गया था। भारतीय धार्मिक आस्था एवं विश्वास पर भी चोट पड़ रही थी। विदेशी शासक छद्मपूर्वक लोगों का धर्म परिवर्तन कर रहा था। उनकी पद्धति मुसलमानों की भांति बर्बर एवं अत्याचार पूर्ण न थी, बल्कि यह सेवा-भाव की, सहृदयता एवं सहयोग की थी। यह शैली ऐसी थी जिसके प्रति व्यक्ति सम्मोहित सा स्वयमेव खिचा चला आता है। इसमें किसी भी प्रकार का जबर्दस्ती का भाव न था। आर्थिक रूप से भी सामान्य भारतीय विपन्नावस्था को प्राप्त थे। ऐसे ही समय में बंगाल में राजा राम मोहन राय का अविर्भाव हुआ। उन्होंने कालान्तर में ब्रह्मसमाज की स्थापना की। आगे चलकर ब्रह्म समाज की बागडोर श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर के हाथ में आई! उनके पश्चात् श्री केशवचन्द्र सेन ब्रह्म समाज के अग्रणी नेता हुए। उनमें आपस में कुछ विषयों पर मतभेद हुए। यद्यपि यह संस्था सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन एवं भारतीय संस्कृति की स्थापना के लिए बनी थी, परन्तु उसके नेता पाश्चात्य दर्शन तथा पाश्चात्य व्यवहार से बहुत अधिक प्रभावित थे। उन्होंने किसी सीमा तक पाश्चात्य विचार धारा का ही प्रतिपादन प्रारंभ कर दिया था। सतीप्रथा का विरोध तथा बाल विवाह को रोकने एवं विधवा विवाह को मान्यता दिलाने में इस संस्था ने उल्लेखनीय योगदान दिया था। ब्रह्मसमाज में वैदिक, बौद्ध, ईसाइयत, और इस्लाम आदि धर्मों के विश्वासों एवं सिद्धान्तों को समाविष्ट करने का प्रयास किया गया। पर ब्रह्मसमाज लम्बे दिनों तक अपना वर्चस्व बनाए न रख सका। केशवचन्द्र सेन के ही समकालीन महर्षि दयानन्द सरस्वती थे। शताब्दियों की राज-नीतिक पराधीनता ने भारतीय समाज को विकारग्रस्त एवं पंगु बना दिया था। हिन्दुओं के धार्मिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मानदण्डों को उस युग में अपूरणीय क्षति पहुंची थी। प्रत्येक क्षेत्र में विकृतियां विद्यमान थी। कट्टर संकीर्णता एवं अनुदारभाव किसी भी प्रकार की प्रगतिशीलता के मार्ग में अवरोध पैदा कर रहे थे। बाल विवाह का प्रचलन, स्त्रियों की शिक्षा पर रोक, उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण, बहु विवाह की स्वीकृति, पर्दा प्रथा, जन्मना जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, बहु देवत्व आदि ऐसी

समस्याएं थीं जिन्होंने उस ऋषिवर का मन विह्वल कर दिया था। ईसाई प्रचारक तो वैदिक धर्म का मूलोच्छेद करने को तत्पर थे। उसी समय महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की। आर्यसमाज ने कालान्तर में आदर्श सामाजिक एवं राजनैतिक तथा आध्यात्मिक दर्शन भारत को और विश्व को दिया। यह ऐसी गौरवमयी घड़ी थी जो सदा सदा मानवता के इतिहास में स्मरण की जाएगी। इसी काल में महाराष्ट्र में महादेव गोविन्द रानाडे तथा डा० आत्माराम पाण्डुरंग के प्रयास से प्रार्थना समाज की स्थापना की गयी थी। यह संस्था तो अब लगभग समाप्त हो चुकी है। ऐसे ही एक अन्य संस्था देव समाज की स्थापना हुई थी। थियोसोफिकल सोसाइटी का जन्म भी लगभग इसी समय हुआ था। एक बार तो ऐसा समय आया था, जब महर्षि दयानन्द सरस्वती भी इस सोसाइटी से लगभग जुड़ गए थे, परन्तु शीघ्र ही उन्हें लगा कि वे जो कर रहे हैं, उससे आर्यसमाज के विस्तार के कार्य में बाधा पड़ेगी। उन्होंने इस संस्था से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इस संस्था की अनेक शाखाएं अभी भी भारत में कार्य कर रही हैं। इसी युग में एक अन्य संस्था ने जन्म लिया। 'रामकृष्ण मिशन' नामक संस्था को महामना रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द ने पुष्पित एवं पल्लवित किया। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय दर्शन को विदेशों तक भी विस्तार दिया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने अनेक दिशाओं में उल्लेखनीय कार्य किया। देश के स्वाधीनता संग्राम में आर्यसमाज की भूमिका का गौरव असन्दिग्ध है। शिक्षा के क्षेत्र में किया गया कार्य, आज भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है। आज देश में सरकारी स्कूलों के बाद, सबसे पहला नम्बर आर्यसमाज तथा डी. ए. वी. द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं का है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार ने ऐसे आर्यरत्न इस देश को दिए जिन्होंने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में तो उल्लेखनीय कार्य किया ही, उन्होंने राजनीति और नृशास्त्रीय, समाज शास्त्रीय परिवर्तन की दिशा में भी बहुत बड़ी भूमिका का निर्वहण किया। उन्होंने ऋषिवर के युगबोध, राष्ट्रहित और मानवहित को अपने जीवन में सर्वोपरि स्थान दिया। वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना, नारी जागरण, नारी उद्धार, दलितोद्धार, अस्पृश्यता निवारण, कुरीति निवारण में महर्षि के अनुयायियों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वैदिक धर्म की ध्वजा को ऊँचा करने में, आर्यसमाज के द्वारा किए गए आर्यसत्याग्रह हैदराबाद, सिंध सत्याग्रह, शारदा एक्ट तथा आर्य विवाह वैधीकरण एक्ट, पंजाब में हिन्दी सत्याग्रह आदि का विशिष्ट महत्व है। वास्तव में ये कार्य आर्यसमाज की जाज्वल्यमान एवं ओजस्विनी वैजयन्ती-पताकाएं हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के बाद स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० रामप्रसाद बिस्मिल, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती महात्मा नारायण स्वामी, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, स्वामी स्वतंत्रतानन्द सरस्वती लाला लाजपतराय, पं० सन्तराम बी-ए. महात्मा भक्तफूल सिंह, श्री हरिबिलास शारदा, श्री चाँदकरण शारदा, श्री घनश्याम सिंह गुप्त, पं नरेन्द्र, पं० रामचन्द्र देहलवी, स्वामी एकेश्वरानन्द सरस्वती, आचार्य एकदेव आदि अनेक

आर्यजनों ने आर्यसमाज की पताका को ऊंचा उठाए रखा। उन्होंने मानवमात्र के कल्याण हेतु, वैदिक मान्यताओं के आधार पर अपने उपदेशों से, भाषाओं से, साहित्य और सेवा से आर्यजगत् को आलोकित किया।

आर्यसन्देश के सम्पादक, आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय मंत्री युवा विद्वान, श्री मूलचन्द गुप्त ने एक योजना बनाई कि इन आर्यजनों को स्मरण करने के लिए तथा उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए 'दिवंगत आर्य श्रेष्ठी' नाम से एक लेखमाला आर्यसन्देश में चलाई जाए। उसी विचारणा का यह रूप आपके सामने है। इस ग्रन्थ में उन सभी लेखों को संकलित किया गया है जो समय समय पर आर्यसन्देश में प्रकाशित हुए हैं। जीवित व्यक्तियों का वृत्त जान लेना भी सरल नहीं है, दिवगंत व्यक्तियों का जीवन वृत्त संकलित कर लेना तो और भी कठिन है।इस लेखमाला को चलाने में सुधी विद्वानों द्वारा किए गए सहयोग के लिए मैं उनका आभारी हूँ।

डा० धर्मपाल
सम्पादक

अनुक्रमणिका

महात्मा नारायण स्वामी

हमें अपनी विभूतियों को समय-समय पर स्मरण करते रहना चाहिए। जब-जब इन महान् विभूतियों के जीवन के सम्बन्ध में हम पढ़ते हैं तो हमें स्वयं भी उसी प्रकार सामाजिक हित में कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। नारायण स्वामी भी उन्हीं विभूतियों में से एक हैं। वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए, राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने के लिए आपने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जो काम किया था उसे भुलाया नहीं जा सकता। देश 15 अगस्त को आजाद हुआ और उसके ठीक दो महीने पश्चात् 15 अक्तूबर 1947 को बरेली के प्रसिद्ध आर्य नेता डा. श्यामस्वरूप जी के निवास स्थान पर इस तपोनिष्ठ धर्मवीर संन्यासी का निधन हुआ था। महात्मा नारायण स्वामी ने आर्यसमाज के लिए आजीवन एवं यथाशक्ति कार्य किया। उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना में सहयोग, आर्यमित्र का सम्पादन, गुरुकुल, वृन्दावन का संचालन, सार्वदेशिक सभा का लम्बे समय तक मंत्रीत्व और बाद में प्रधानत्व, स्वामी दयानन्द की जन्म शताब्दी का आयोजन, हैदराबाद के सत्याग्रह का संचालन आदि उनके कार्य हैं जो उनके नाम से जुड़े हैं। उनका नाम एवं कार्य आर्यसमाज के इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेंगे।

महात्मा नारायण स्वामी का दिल्ली वालों के लिए और भी विशेष महत्त्व है। आर्यसमाज दीवान हाल की आधारशिला रखने वाले महात्मा नारायण स्वामी थे और आर्यसमाज हनुमान् रोड के विशाल भवन का उद्घाटन करने वाले भी वहीं थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि सत्भ्रांवा के 55 हजार रुपये के दान से निर्मित यह भवन नई देहली के स्वरूप के अनुसार बहुत ही भव्य बना है। अभी यहां पर उपदेशकों तथा पुरोहितों के लिए निवास एवं अतिथियों के लिए धर्मशाला भी बनाई गई है। इस भवन का उद्घाटन उन्होंने 10 दिसम्बर 1933 को किया था।

—डा॰ धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 16-10-88)

महात्मा आनन्द स्वामी

इस अवसर पर हमें महात्मा आनन्द स्वामी की भी याद आती है। स्वामी जी का जन्म 15 अक्तूबर 1882 को हुआ था। वे 1912 में राई-रीडिंग बमकेस में राजद्रोही घोषित किये गये थे। 1921 में उन्होंने मालाबार में मोपला अत्याचारों से पीड़ित हिन्दुओं की सेवा एवं रक्षा की थी। 1939 में उन्होंने 'हैदराबाद सत्याग्रह' में भाग लिया था। उन्होंने सिंध सत्याग्रह में भी भाग लिया। वे 1949 में संन्यासी बने और आजीवन उन्होंने देश में और विदेशों में वैदिक धर्म का प्रचार किया। उनकी वक्तृता शैली आज भी हमारे कानों में अमृतरस घोलती है। केनिया, युगांडा, तंजानिया, मारीशस, जंजीबार आदि अनेक देशों में उन्होंने प्रचार किया।

आओ, हम उनके जीवन से प्रेरणा लेकर आर्यसमाज के कार्य में प्रवृत्त हो जायें।

—डा० धर्मपाल
(आर्यसन्देश, 16-10-88)

सत्यार्थ प्रकाश बनने का प्रयोजन

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है। अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना, सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाए। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है।

जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

इसीलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में "लाल-बाल-पाल" की त्रिमूर्ति जगत्-प्रसिद्ध है। इस त्रिमूर्ती के "लाल" पंजाब केसरी लाला लाजपतराय का बलिदान दिवस 17 नवम्बर को देश भर में उत्साह से मनाया जाता है। देश के पश्चिमोत्तर क्षेत्रों के सामाजिक, राजनैतिक तथा शैक्षिक जगत् में लाला जी का स्थान सर्वोपरि था। राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए अपने उग्र विचारों के लिए विख्यात लाला जी को ब्रिटिश सरकार ने देश से दूर माण्डले में नजरबन्द कर दिया था। लाला जी ने "साइमन कमीशन वापस जाओ" के जुलूस का नेतृत्व करते हुए ब्रिटिश सरकार की लाठियों का सामना किया था और इन लाठियों के फलस्वरूप ही लाला जी शहीद हुए थे। उनके बलिदान से देश तथा समाज में नव जागरण की ज्योति प्रज्वलित हुई। साइमन कमीशन के विरोध के समय लाला जी ने कहा था—"मेरे शरीर पर पड़ी हुई एक-एक लाठी अंग्रेजी साम्राज्य के विनाश के लिए कफन की कील साबित होगी।" और यही हुआ।

लाला लाजपतराय का जन्म 28 जनवरी 1865 को हुआ था।

आर्यसमाज एवं राष्ट्रवादी तत्त्वों को स्वर्गीय लाला जी के समाज सुधार तथा राष्ट्र-निर्माण के कार्यों को समुन्नत कर उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि प्रस्तुत करनी चाहिये।

—डा० धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 20-11-88)

पं. प्रकाशवीर शास्त्री

आर्यनेता पं० प्रकाशवीर शास्त्री के 23 नवम्बर 1977 को असामयिक निधन पर तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई द्वारा व्यक्त श्रद्धांजलि—

"पं. प्रकाशवीर शास्त्री हमेशा देशभक्ति के कार्य करते रहे। वे भारतीय संस्कृति, वैदिक धर्म, देश की एकता और हिन्दी भाषा में अनन्य आस्था रखते थे। परन्तु वे कट्टर नहीं थे, उनके व्यवहार एवं भाषा में शालीनता थी। वे कभी बोलने के लिए नहीं बोलते थे। वे कोई ठोस विचार व्यक्त करने के लिए ही बोलते थे। हिन्दी को इतने प्रभावी ढंग से बोलने वाले बहुत कम ही मिलेंगे।

शास्त्री जी महान् देशभक्त एवं वैदिक धर्म के महान् प्रचारक, वैदिक साहित्य के प्रकांड पंडित, भारतीय संस्कृति के अपूर्व व्याख्याता, जाने-माने साहित्यकार, दूरद्रष्टा एवं समाज सुधारक थे। उनके विरोध में प्रखरता तो होती थी लेकिन कटुता नहीं। उनके धारा-प्रवाह भाषण को सुनकर लोग मन्त्रमुग्ध हो जाते थे।

शास्त्री जी आर्यसमाज के एक सबल स्तम्भ थे। हमें उनके पद-चिन्हों पर चलकर, उनके प्रति श्रद्धांजलि प्रस्तुत करनी चाहिये।

—मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 20-11-88)

सत्य पर उद्यत

इस ग्रन्थ में जो कहीं भूल चूक से अथवा शोधने तथा छापन में भूल चूक रह जाय उसको जानने जनाने पर जसा वह सत्य होगा वैसा ही कर दिया जाएगा। और जो कोई पक्षपात से अन्यथा, शंका वा खण्डन मण्डन करेगा उस पर ध्यान न दिया जाएगा। हां जो वह मनुष्यमात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा उसको सत्य सत्य समझने पर उसका मत संग्रहीत होगा।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

श्री अलगूराय शास्त्री

श्री शास्त्री जी का जन्म 29 जनवरी सन् 1900 को उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जनपद के 'अमिला' ग्राम में हुआ था। आपने राष्ट्रीय गतिविधियों तथा शिक्षा के क्षेत्र में अनेक क्रांतिकारी कार्यों में भाग लेने के साथ-साथ समाज सुधार की अपनी प्रवृत्तियों में कमी नहीं रखी और आर्यसमाज के क्रांतिकारी-कार्यों में सक्रिय रूप से जुड़ गये। रविवारीय सत्संगों में आपके भाषण बड़ी ही रुचिपूर्वक सुने जाते थे। आप जहाँ कुशल कवि और गम्भीर समीक्षक थे, वहीं दार्शनिक विषयों पर भी आपका पूर्ण अधिकार था, जिसका प्रमाण आपकी रचनाओं शंकर दर्शन तथा 'ऋग्वेद रहस्य' 'वेदान्त-दर्शन' (अप्रकाशित) में भली-भांति मिल जाता है।

शास्त्री जी अनेक वर्षों तक आर्य जगत् की शिरोमणि संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान रहे। जिन दिनों आप लोकसभा के सदस्य थे, तब आपने आर्यसमाज के अनुरोध पर 'पंजाब हिन्दी आन्दोलन' के समय सत्याग्रहियों पर फिरोजपुर जेल में किये गये अत्याचारों के सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक प्रतिवेदन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू को दिया था।

मेरठ की सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्था "गुरुकुल डौरली" की स्थापना में आपका प्रमुख सहयोग रहा। बाद में बहुत समय तक आप इस संस्था के कुलपति भी रहे। स्वतन्त्रता-आन्दोलन में आपको अनेक बार कारावास भुगतना पड़ा, वहाँ भी आपकी लेखनी साहित्य-सर्जन का कार्य करती रही।

—मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 1-1-89)

महात्मा दयानन्द

दिव्यात्मा महात्मा दयानन्द का अभी स्वर्गवास हुआ। रोहतक में 22 जनवरी 1989 को उनका अन्तिम संस्कार किया गया। महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों का प्रचार-प्रसार करने में उनका योगदान सर्वविदित है। 'तपोवन' देहरादून में जो लोग गए हैं, वे जानते हैं कि कितनी भव्य और अनुकरणीय जीवन और ध्यान पद्धति बनाने में उन्होंने अपना समय लगाया। महात्मा दयानन्द का दिल्ली की आर्यसमाजों में बहुत आगमन होता था। पिछले दिनों वे आर्यसमाज चूनामण्डी के वार्षिकोत्सव वार्षिकोत्सव पर आए थे। उनका धीर-गम्भीर मुखमण्डल किंचित् मुस्कान लिये अभी भी हमारी आँखों के सामने है। आर्यसन्देश परिवार की ओर से उस पुण्यात्मा के लिए शतशत श्रद्धांजलि।

—मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 29-1-89)

उन्नति का कारण सत्योपदेश

जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आचार्य शुक्रराज नेपाली

इस वीर पुरुष का नाम आर्यसमाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। नेपाल यद्यपि हिन्दू राज्य है, परन्तु इसे पौराणिक धर्म ने इतना अधिक जकड़ रखा है, मूर्ति पूजा, मांस मदिरा का प्रचार, भैंसों-बकरों की बलि और सम्प्रदाय व तांत्रिकों का जाल इतना भयंकर है कि साधारण जनता को इससे निकलने का कोई रास्ता नहीं सूझता। ऐसे प्रदेश में इन कुरीतियों का भण्डाफोड़ करने वाले हुए हैं, आचार्य शुक्रराज शास्त्री। जिनको आज से 48 वर्ष पूर्व 29 जनवरी 1941 को खुलेआम फांसी पर लटका दिया गया था। उस वीर के पिता ने कहा था—हे पुत्र, स्वार्थी लोगों ने यह सब कराया है। महाराज ने तुमको मृत्यु दण्ड सुना दिया। तुम धर्म पर दृढ़ हो, तुमने कोई पाप कर्म नहीं किया है। यदि पाप कर्म का दण्ड पाते, तो मेरे लिए लज्जा की बात होती और तुम्हारे लिए भी। धर्म पर मरना गौरव की बात है।

वाह, रे वीर, तुम धर्म के लिए! सच्चा रास्ता दिखाने के लिए मरे। इसी धरती पर समय आयेगा और सच्चे धर्म का आलोक फैलेगा। सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन में नेपाल के प्रतिनिधि भी आए थे। यह इस बात का प्रमाण है कि जो सत्य है, वही विद्यमान रहता है।

—मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 29-1-89)

लाला लाजपतराय

स्वातन्त्र्य समर के निर्भीक योद्धा, शेरे पंजाब, लाला लाजपत राय का नाम हम आज भी बड़े गौरव के साथ ऊँचे स्वर में गाते हैं—'तूने ही लाला लाजपत, शेरे बबर बना दिया।' 'आर्यसमाज मेरी माता है'—यह उद्घोष करने वाले वीर लाला लाजपत राय का जन्म 28 जनवरी 1865 को हुआ था। पं. गुरुदत्त और महात्मा हंसराज के साथ रहकर आपका सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ हुआ था। साइमन कमीशन के विरोध के समय आपने कहा था—'मेरे शरीर पर पड़ी हुई एक-एक लाठी अंग्रेजी साम्राज्य के विनाश के लिए कफन की कील साबित होगी।

और यही हुआ। उनका जीवन हमें राष्ट्रमाता के लिए पूर्ण समर्पण का सन्देश देता है। गणतन्त्र दिवस पर आओ हम उनका पुनीत स्मरण करें।

—मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 29-1-89)

मनुष्य जाति की उन्नति।

मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य का निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वाद विवाद विरोध करने कराने के लिये। इसी मत-मतान्तर के विवाद से जगत में जो-जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब तक अयोऽन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या, द्वेष, छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिए यह बात असाध्य नहीं है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

पं. रामचन्द्र देहलवी

पं. रामचन्द्र देहलवी का जन्म सन् 1881 में रामनवमी के दिन मुंशी छोटेलाल और रामदेई के घर मालवा की छावनी नीमच नगर में हुआ था। उनका देहावसान 3 फरवरी 1968 रात को 9.30 बजे हुआ था। अगले दिन दीवानहाल से जब उनकी शव यात्रा प्रारम्भ हुई तो दिल्ली के हजारों लोग उनके पीछे थे। स्वामी दयानन्द का वह अनन्य भक्त, आर्यसमाज का अनथक सेवक, ईश्वर विश्वासी और आत्मिक बल का धनी, दिव्य पुरुष सदा हमें प्रेरणा देता रहेगा। उन दिनों चांदनी चौक फव्वारे पर दो दिन मुसलमानों का और दो दिन ईसाइयों का प्रचार होता था। माननीय पंडित जी का नियम था कि वे जब दिल्ली में रहते, अपने साथ अपनी चटाई स्वयं लाते और गांधी मैदान में बिछा लेते। वहाँ पर उनके साथी मित्रों की भीड़ जमा हो जाती और वे अपनी बात युक्ति-संगत तरीके से कहना प्रारम्भ करते। उनका वेद प्रचार का यह अनूठा ढंग आज भी हमें पार्कों में और सड़कों के किनारे प्रचार की प्रेरणा देता है। वे ईसाइयों और मुसलमानों की बातें भी ध्यान से सुना करते थे और अपनी बारी आने पर उनकी बातों का युक्ति युक्त उत्तर देते थे। पंडित जी ने अन्य धर्मग्रन्थों का भी गहन अध्ययन किया था। हैदराबाद सत्याग्रह और हिन्दी सत्याग्रह में उनका योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा।

—मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 5-2-89)

स्वामी स्वतन्त्रतानन्द सरस्वती

स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज का जन्म जनवरी मास में हुआ था। उस लौह पुरुष ने वैदिक धर्म, आर्यसमाज और देश के लिए अपने आपको न्यौछावर कर दिया। उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। स्वाधीनता के लिए वायसराय की आज्ञा से बन्दी बनाए गए वे ही अकेले साधु थे। उस समय वे श्रीमद् दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर के आचार्य थे। स्वामी जी महाराज की कथनी और करनी एक थी। स्वर्गीय वैद्य सच्चिदानन्द जी उनके कार्य-व्यवहार को देखकर आर्यसमाज के प्रति आकर्षित हुए थे। इसी वीर पर लोहारू, हरियाणा में लाठियाँ और कुल्हाड़े चले पर वह दयानन्द का सच्चा सिपाही अपने रास्ते पर अडिग रहा। उस वीर को हमारी श्रद्धाविनत श्रद्धांजलि।

--मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 5-2-89)

पक्षपात से अनर्थ।

क्योंकि पक्षपात से क्या-क्या अनर्थ जगत में न हुए और न होते हैं। सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभङ्ग जीवन में पराई हानि करके लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहिः है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्वामी दयानन्द युग प्रवर्त्तक थे

अनन्त और परिमित काल का जब संगम होता है, कहा जाता है कि तब तब महापुरुषों का जन्म होता है।

हमारा सौभाग्य है कि भारत ने बहुत से ऐसे महापुरुषों को जन्म दिया, जिन्होंने समय पर अपनी अमिट छाप छोड़ी और जिनका सन्देश अमर है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती तेजस्वी और आध्यात्मिक तो थे ही, साथ ही वे एक युग-प्रवर्तक और समाज सुधारक भी थे।

श्री अरविन्द ने उनके बारे में कहा था कि उनकी आत्मा में ईश्वर था, उनके नेत्रों में दूर-दृष्टि और उनके हाथों में शक्ति थी। वे प्रकाश के अग्रदूत और मानव-शिल्पी थे।

स्वामी दयानन्द राजनीतिक तथा मानसिक गुलामी के विरुद्ध थे। उनका सन्देश था स्वतन्त्रता—न केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता बल्कि अन्धविश्वास, रूढ़िवाद तथा वर्गभेद से स्वतन्त्रता। उन्होंने कहा—'संसार अन्धविश्वास और अज्ञान की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है। मैं उन्हीं बेड़ियों को तोड़ने और लोगों को दासता से मुक्ति दिलाने के लिए आया हूँ। लोगों को उनकी स्वाधीनता से वंचित रखना मेरे उद्देश्य के सर्वथा विपरीत है।'

मनुष्य की समानता में उनका गहरा विश्वास था। उन्होंने कहा—'सभी मनुष्य जन्म से और प्रभु की दृष्टि में समान हैं। इस समानता में रंग और देश से कोई अन्तर नहीं पड़ता।'

स्वामी जी का ध्यान हमेशा उन लोगों की ओर लगा रहता था, जो दुख-दारिद्र्य और अन्धकार से घिरे थे। उन्होंने अपने लिए मुक्ति नहीं चाही। वे कहते थे—'यदि मैं अकेला ही मोक्ष प्राप्त कर लूं तो उससे क्या लाभ है? मेरी हार्दिक इच्छा है कि सारी मनुष्य जाति मुक्ति प्राप्त करे।'

भारत के लोगों से उनका आग्रह था कि जाति-पांति के अभिशाप से छुटकारा पायें और अस्पृश्यता छोड़ें।

महात्मा गांधी के विचार में स्वामी जी द्वारा छुआछूत का विरोध और निन्दा उनकी महान् विरासत है।

उन्होंने स्त्रियों को समानता तथा शिक्षा व सामाजिक उत्तरदायित्वों के अधिकार दिलाने के लिए भी संघर्ष किया।

फ्रांसीसी विद्वान् रोम्या रोलां ने उन्हें 'कर्मचिन्तक' कहा है। उनका जीवन शंकराचार्य के इस सूत्र का एक दृष्टान्त है कि कर्म के बिना ज्ञान निरर्थक है।

कभी-कभी यह गलत समझा जाता है कि स्वामी दयानन्द ने केवल हिन्दू धर्म के बारे में सोचा। उन्होंने हिन्दू धर्म को अन्धविश्वास के चंगुल से अवश्य ही निकालना चाहा, लेकिन किसी दूसरे धर्म के प्रति अनुदारता नहीं दिखाई।

उनका एक उत्तम विचार है—'यदि आप भगवान् में विश्वास करते हैं तो सभी आस्तिक व्यक्ति परमात्मा के परिवार के अंग हैं। यदि आप उस परम तत्त्व में विश्वास करते हैं तो प्रत्येक मानव में उसी परम तत्त्व की ज्योति आलोकित हो रही है।'

स्वामी दयानन्द के निधन पर सर सैयद अहमद खां ने कहा—'यह मुनासिब ही था कि सभी धर्मों के लोग उनकी इज्जत करते थे।'

स्वामी के हृदय में एक आग थी, लेकिन वह दाहक नहीं, पावक थी। महापुरुष सदा उन सब संस्थाओं से महान् होते हैं जिनका वे निर्माण करते हैं या जो उनकी स्मृति में उनके पन्थ और सन्देश के प्रचार के लिए स्थापित होती हैं।

महापुरुषों के ऊँचे विचारों और उद्देश्यों की व्यापकता को अधिकांश लोग हमेशा पूरी तरह समझ नहीं पाते और व्यक्ति और विचार दोनों को सीमित बना देते हैं। इनको ध्यान में रखते हुए यदि हम विश्वास और नम्रता से स्वामी दयानन्द के स्वप्नों और कर्मों की दिशा में चलने की कोशिश करेंगे तो हम ठीक मार्ग पर होंगे।

आर्यसमाज सौ साल से स्वामी जी के उपदेशों को आगे बढ़ाने के प्रयत्न में लगा है। इसके दो पहलू हैं—पहला आध्यात्मिक और दूसरा सामाजिक। शताब्दी समारोह के अवसर पर मैं आर्यसमाज को बधाई देती हूँ तथा विशेषकर उसके शिक्षा और समाज सेवा के कार्यक्रमों की सफलता की कामना करती हूँ।

रानाडे ने एक बार कहा था कि आप धर्म में रूढ़िवादी और राजनीति में पुरोगामी नहीं हो सकते। यदि आप मनुष्य की एकता में विश्वास करते हैं तो सभी धर्मों का सम्मान करना आवश्यक है। मनुष्य की सेवा स्वयं एक धर्म है। मुझे आशा है कि आर्यसमाज इसी भावना से शिक्षा, समाज और अध्यात्म के क्षेत्रों में अपना कार्यक्रम जारी रखकर हमारे राष्ट्र की नींव मजबूत करेगा।

—स्व. श्रीमती इन्दिरा गांधी का आर्यसमाज स्थापना शताब्दी के अवसर पर वक्तव्य

(आर्यसन्देश, 12-2-89)

महात्मा मुन्शीराम

महात्मा मुन्शीराम का जन्म सन् 1856 में जालन्धर (पंजाब जनपद के 'तलवन' नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री नानकचन्द उन दिनों 'शहर कोतवाल' थे और उन्हें बाद में 'रिसालदार' बनाकर सहारनपुर भेज दिया गया था। जिन दिनों वे सहारनपुर में मेलाघाट की लड़ाई पर नेपाल की तराई में गए हुए थे वहां पर ही उन्हें 'मुन्शीराम जी' के जन्म की सूचना मिली थी। जन्म के बाद आपके पारिवारिक पुरोहित ने बालक का नाम 'बृहस्पति' निकाला था, जो बाद में 'मुन्शीराम' हो गया और गुरुकुल की स्थापना के अनन्तर गाँधी जी ने आपके नाम के साथ 'महात्मा' शब्द और जोड़ दिया था। यही 'महात्मा मुन्शीराम' बाद में संन्यास आश्रम में दीक्षित होने के उपरान्त 'स्वामी श्रद्धानन्द' कहलाए।

जब आपके पिता की नियुक्ति स्थायी रूप से बरेली में हो गयी तो उन्होंने बालक मुन्शीराम को भी बरेली ही बुला लिया। क्योंकि उन दिनों पुलिस विभाग में फारसी का ही बोलबाला था, इसलिए मुन्शीराम जी की प्रारम्भिक शिक्षा भी फारसी में ही हुई। बाद में जब आपके पिता श्री नानकचन्द का स्थानान्तरण बनारस के लिए हो गया, तब आपकी शिक्षा के लिए एक हिन्दी-अध्यापक भी लगा दिया गया; और बाद में उसे संतोषजनक न समझकर मुन्शीराम जी को इलाहाबाद के 'म्योर सेण्ट्रल कॉलेज' में प्रविष्ट करा दिया गया। यहाँ पर भी आपकी शिक्षा अधिक आगे नहीं बढ़ सकी और आपका विवाह कर दिया गया। विवाहोपरान्त आपने सन् 1880 में लाहौर जाकर वकालत की पढ़ाई प्रारम्भ की और वहाँ पर रहते हुए आपने सामाजिक संस्थाओं में भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। एक बार जब बरेली में आप पिताजी के पास थे तब आपको वहाँ पर स्वामी दयानन्द सरस्वती का भाषण सुनने का सुअवसर भी मिला था। उससे आपकी दिशा ही बदल गई और आप नास्तिक से एकदम आस्तिक बन गए।

लाहौर में मुख्तारी की परीक्षा उत्तीर्ण करके मुन्शीराम जी ने जालन्धर को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया और अपनी लगन, सत्यनिष्ठा और कर्म-कुशलता से आप नगर के प्रमुख वकीलों में गिने जाने लगे। अपना वकालत का कार्य करते हुए आपने 'आर्यसमाज' की गतिविधियों में भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। कई वर्ष तक आप वहां की आर्यसमाज के प्रधान रहने के साथ-साथ 'पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के भी प्रधान रहे थे। आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार करने की दृष्टि से आपने जालन्धर से 'सद्धर्म-प्रचारक' नामक एक उर्दू साप्ताहिक भी निकालना प्रारम्भ कर

दिया था, जो बाद में सन् 1908 से हिन्दी में प्रकाशित होने लगा था। उन दिनों आर्यसमाजी जगत् का यह अकेला पत्र था और इसने निरन्तर 23 वर्ष तक पंजाब में आर्य सिद्धान्तों तथा हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार का महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। सैकड़ों पंजाबी आर्यसमाजियों ने 'प्रचारक' के कारण ही हिन्दी का अभ्यास किया था। जब 'प्रचारक' उर्दू में निकलता था, तब भी महात्मा जी उसमें प्रायः हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के पक्ष में लेख लिखा करते थे। आपके उस प्रचार का ही यह प्रभाव हुआ था कि सभी आर्यसमाजी उर्दू पत्रों की भाषा भी हिन्दी-प्रभावित उर्दू हो गई थी।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट शिक्षा-पद्धति के प्रचार के लिए पंजाब में जहाँ महात्मा हंसराज ने डी. ए. वी. स्कूल स्थापित करने की पहल की वहां महात्मा मुन्शीराम ने उनसे एक कदम आगे बढ़कर गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के द्वारा वैदिक सिद्धान्तों की शिक्षा हिन्दी माध्यम से दिलाने की दृष्टि से सन् 1899 में शिवालक पर्वत की उपत्यकाओं में हरिद्वार के समीप भगवती भागीरथी के पुण्य तट पर काँगड़ी (बिजनौर) ग्राम में 'गुरुकुल' की स्थापना कर दी, जो बाद में 'गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय' के रूप में देशभर में विख्यात हुआ। इस संस्था ने जहां उच्चतम शिक्षा के लिए हिन्दी माध्यम की सार्थकता प्रमाणित की वहां शिक्षा तथा राजनीति के क्षेत्र में कार्य करने वाले अनेक सुयोग्य स्नातक प्रदान किये। इस संस्था का लक्ष्य अपने छात्रों को पाश्चात्य प्रभाव से सर्वथा मुक्त करके विशुद्ध भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल आलोक में देश के सच्चे नागरिक बनाना था। जिन दिनों आप गुरुकुल में मुख्याधिष्ठाता के रूप में शिक्षा तथा संस्कृति के उन्नयन का यह नया प्रयोग कर रहे थे, तब आपके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर श्री रेम्जे मैकडॉनल्ड ने आपके सम्बन्ध में यह सही ही लिखा था—'एक महान्, भव्य और शानदार मूर्त्ति—जिसको देखते ही उसके प्रति आदर का भाव उत्पन्न होता है, हमारे आगे हमसे मिलने के लिए बढ़ती है। आधुनिक चित्रकार ईसा-मसीह का चित्र बनाने के लिए उसको अपने सामने रख सकता है और मध्यकालीन चित्रकार उसे देखकर सैण्ट पीटर का चित्र बना सकता है।"

गुरुकुल तथा आर्यसमाज के कार्यों में समय देने के साथ-साथ आप राजनीतिक क्षेत्र में भी सक्रिय रूप से भाग लेते थे। आपके अभूतपूर्व साहस का परिचय सन् 1919 की उस घटना से ही मिल जाता है जबकि दिल्ली के चाँदनी चौक बाजार में घंटाघर के सामने गोरे सिपाही गोलियों की बौछार करने की तैयारी में थे और स्वामी जी ने छाती खोलकर उन्हें ललकारते हुये यह निर्भीक घोषणा की थी—"लो चलाओ गोलियाँ।" ऐसी एक नहीं, अनेक घटनाएँ आपके जीवन में घटी थीं। गांधी जी उन दिनों दक्षिण अफ्रीका के 'नेटाल सत्याग्रह' में व्यस्त थे। दीनबन्धु सी. एफ. एण्ड्रूज ने मुन्शीराम जी के दिव्य गुणों का वर्णन उनसे किया था। उस समय आप केवल 'मुन्शीराम' थे और महात्मा गांधी भी 'महात्मा' के विशेषण से विभूषित नहीं हुए

थे। बाद में दोनों के नाम के साथ 'महात्मा' शब्द जुड़ गया। यह नामकरण भी दोनों ने परस्पर ही किया था। गांधी जी ने सर्वप्रथम मुन्शीराम जी को 'महात्मा' नाम से सम्बोधित करते हुए 21 अक्तूबर सन् 1914 को दक्षिण अफ्रीका से जो पत्र लिखा था, वह इस प्रकार है—

"प्रिय महात्मा जी,

मि० एण्ड्रूज ने आपके नाम और काम का मुझे इतना परिचय दिया है कि मैं अनुभव कर रहा हूं कि मैं किसी अजनबी को पत्र नहीं लिख रहा। इसलिए आशा है कि आप मुझे आपको 'महात्मा जी' लिखने के लिये क्षमा करेंगे। मैं और एण्ड्रूज साहब आपकी चर्चा करते हुए आपके लिये इसी शब्द का प्रयोग करते हैं। उन्होंने मुझे आपकी संस्था गुरुकुल को देखने के लिए अधीर बना दिया है।

—आपका 'मोहनदास गाँधी'

मिस्टर गाँधी से महात्मा गाँधी

इस पत्र को लिखने के 6 मास बाद जब गांधी जी भारत आये तो वे गुरुकुल भी पधारे थे। वहां गुरुकुल की ओर से उन्हें जो मानपत्र 8 अप्रैल सन् 1915 को दिया गया था, उसमें गाँधी जी को भी पहले-पहल 'महात्मा' नाम से सम्बोधित किया गया था।

इस बीच अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सन् 1913 में आपको जहां अपने भागलपुर अधिवेशन का अध्यक्ष मनोनीत किया था वहां आपने अपनी संस्था गुरुकुल के माध्यम से राष्ट्रभाषा हिन्दी के गौरव की अभिवृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान किया था। सम्मेलन के अध्यक्ष पद से बोलते हुए आपने हिन्दी की महत्ता के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये थे उनसे आपके राष्ट्रभाषा प्रेम का उत्कृष्ट परिचय मिलता है। आपने न केवल 'साहित्य सम्मेलन' के मंच से हिन्दी की महत्ता प्रतिपादित की प्रत्युत राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के अमृतसर में हुये अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष पद से भी हिन्दी में ही भाषण दिया था। आपके द्वारा लिखित 'कल्याण मार्ग का पथिक' नामक रचना आत्मकथा साहित्य की एक अभूतपूर्व निधि है। अपने जीवन के उत्तरकाल में आप शुद्धि-आन्दोलन के समर्थक हो गए थे और इसी कारण अब्दुल रशीद नामक एक धर्मान्ध मुस्लिम युवक ने 23 दिसम्बर सन् 1926 को, जब आप डबल निमोनिया से अस्वस्थ थे, तीन गोलियों का निशाना बनाकर आपके जीवन की बलि ले ली।

—आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन
(आर्यसन्देश, 19-2-89)

स्वामी श्रद्धानन्द के ज्येष्ठ पुत्र—

श्री हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

श्री हरिश्चन्द्र जी का जन्म सन् 1887 में जालन्धर (पंजाब) में हुआ था। आप देश के प्रख्यात नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी के ज्येष्ठ पुत्र थे और आपकी शिक्षा-दीक्षा अपने पिता द्वारा संस्थापित संस्था गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में हुई थी। सन् 1912 में गुरुकुल से स्नातक होने के उपरान्त पहले कुछ दिन आपने गुरुकुल में ही 'तुलनात्मक धर्म व साहित्य' के अध्यापक का कार्य किया और बाद में अपने पिता जी द्वारा संस्थापित तथा दिल्ली से प्रकाशित 'सद्धर्म-प्रचारक' तथा 'विजय' आदि पत्रों का सम्पादन किया था।

सन् 1914 में आप प्रख्यात क्रान्तिकारी राजा महेन्द्र प्रताप के साथ यूरोप चले गए थे। वहां पर क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों में भाग लेने के कारण आप गिरफ्तार हुये तथा आप कोई भेद न देने के कारण बिजली के करण्ट से तपती हुई टीन की चादर पर लिटा कर मार दिये गये थे।

आप हिन्दी के प्रखर पत्रकार होने के साथ-साथ उत्कृष्ट लेखक भी थे। आपने जहां 'संस्कृत प्रवेशिका' नामक पुस्तक की रचना की थी वहां 'वाल्मीकि रामायण' का डच भाषा में अनुवाद भी किया था। आप प्रभावशाली वक्ता तथा स्वतन्त्र विचारक भी थे।

—आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन
(आर्यसन्देश, 26-2-89)

मुनिवर पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

पं. गुरुदत्त की मात्र 26 वर्ष की आयु में 19 मार्च 1890 को मृत्यु हुई थी। पाश्चात्य संसार की आँखों को वैदिक ज्योति से चुंधिया देने वाला अद्वितीय व्याख्याता इस संसार से सदा के लिए उस दिन विदा हो गया था। सभी लोग विलाप करते रह गए। एक शून्य छा गया। यदि वे अभी भी होते, तो उन्होंने आर्यसमाज का कितना काम किया होता। महर्षि दयानन्द सरस्वती की मृत्यु के बाद वे केवल छः वर्ष ही तो जीवित रहे, पर आर्यसमाज आन्दोलन में वे अमिट छाप छोड़ गए। उन्होंने वैदिक साहित्य की बड़ी भारी सेवा की। आर्यसमाज का प्रचार किया। अपने शरीर तक की उन्होंने परवाह न की।

पं. गुरुदत्त 26 अप्रैल 1864 को मुलतान नामक नगर में पैदा हुए थे। पंजाब प्रान्त ने आर्यसमाज को अनेक महापुरुष दिए हैं। स्वामी विरजानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पं. लेखराम, महात्मा हंसराज, आचार्य रामदेव यहीं पर जन्मे थे। पं. गुरुदत्त 20 जून 1880 को आर्यसमाज में प्रविष्ट हुए थे। उन दिनों पं. रेमलदास और लाला चेतनानन्द उनके परम मित्र थे। उन्हें आर्यसमाज लाहौर की ओर से 1883 में स्वामी दयानन्द सरस्वती की रुग्णावस्था में सेवा करने भेजा गया था। 19 वर्ष का गुरुदत्त। स्वामी जी महाराज की स्थिति एवं वक्तव्य से बहुत प्रभावित हुआ। उन्होंने देखा कि ईश्वर विश्वासी व्यक्ति कितनी शान्ति से मरता है। यह आस्तिकता की उनके ऊपर अमिट छाप थी। उनके अनेक लेख 'आर्य मैगजीन', 'दी रीजनेटर ऑफ आर्यावर्त्त' तथा 'आर्य पत्रिका' में छपे थे। उनकी पुस्तकें 'वैदिक संज्ञा विज्ञान तथा यूरोपीय विद्वान्', 'वाजसनेय संहितोपनिषद्' 'ईशोपनिषद्' आदि प्रकाशित हुई। ऋग्वेद के मन्त्रों पर उन्होंने 'वायुमण्डल', 'जलरचना' तथा 'गृहस्थ' नाम से लेख लिखे। उन्होंने अनेक लेख अंग्रेजी, हिन्दी एवम् संस्कृत में लिखे। हमारी पं. गुरुदत्त के प्रति विनत श्रद्धांजलि।

—डा० धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 12-3-89)

पं॰ देवव्रत धर्मेन्दु

सहस्रों युवकों के प्रेरक और मार्गदर्शन तथा परहित के लिए जीवन समर्पण करने वाले आर्य विद्वान् स्व. पं. देवव्रत धर्मेन्दु आर्योपदेशक का जन्म वैशाखी के पवित्र दिन दिनांक 13 अप्रैल, 1904 ई. को पंजाब के जेहलम (अब पाकिस्तान में) जिले में स्थित जलालपुर कीकनां नामक गांव में हुआ था। यद्यपि शैशवावस्था में ही आपको माता-पिता के स्नेह से वंचित होना पड़ा, फिर भी आप गिरते-पड़ते और मन्दिरों-गुरुद्वारों में धक्के खाते हुए अंत में सत्यार्थप्रकाश के प्रभाव से आर्यसमाज में दीक्षित हुए। दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय लाहौर से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर, आप आर्यसमाज के प्रचारक के रूप में देश भर में आर्यसमाज के प्रचार कार्य तथा सुधार कर्मों में अग्रणीय रहे।

दिल्ली में स्थायी निवास कर आपने आर्यसमाज द्वारा संचालित सभी आन्दोलनों तथा आर्य महासम्मेलनों में बढ़ चढ़ कर कार्य किया। भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् तथा बाद में आर्य युवक परिषद् के माध्यम से जहाँ दिल्ली की आर्यसमाजों में युवकों को आगे लाये, वहाँ देशभर में युवक परिषद् की सत्यार्थप्रकाश परीक्षाओं द्वारा लाखों स्त्री-पुरुषों को सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन करवाया, उन्हें आर्यसमाज की ओर लाने की नींव डाली।

आर्य युवक परिषद्, आर्य अनाथालय, सार्वदेशिक प्रकाशन, आदि अनेक संस्थायें उनके द्वारा की गई सेवाओं से आज भी अपनी अलग पहचान बनाये हुए हैं। 'दैनिक यज्ञप्रकाश', जिसका संस्करण 20 लाख को पार कर चुका है, पं. जी का कीर्तिस्तम्भ है। दिल्ली के आर्य सामाजिक क्षेत्र में पं. जी कर्मशील व्यक्ति, आदर्श प्रचारक, बाल हितैषी, कर्मयोगी, आदर्श समाज सेवी, दानी, उपदेशक, भाषण प्रतियोगिता-मन्त्री, आदि शब्दों से सम्बोधित किए जाते थे।

पं. जी का निधन लम्बी बीमारी के पश्चात् दिल्ली में हुआ।

स्व. पं. देवव्रत 'धर्मेन्दु' आर्योपदेशक के प्रति हमारी श्रद्धांजलि।

—मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 9-4-89)

वैद्य गुरुदत्त

हिन्दू-राष्ट्रवाद पर आधारित विचारधारा के प्रवर्तक, भारतीय संस्कृति के प्रबल पोषक, वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ, सुप्रसिद्ध उपन्यासकार और स्वतन्त्रता सेनानी वैद्य गुरुदत्त का 8 मार्च 1989 को निधन हो गया।

श्री वैद्य गुरुदत्त 95 वर्ष के थे। उनके परिवार में दो पुत्र और एक पुत्री हैं। श्री गुरुदत्त को दिल का जबरदस्त दौरा पड़ा था और वे तभी से अचेत थे। घर पर ही उनका इलाज चल रहा था। दिन में करीब 12-30 बजे उन्हें कुछ देर के लिए होश आया और उन्होंने वेद-मंत्र के साथ अपनी अंतिम सांस ली—'हे प्रभु सभी को वह बुद्धि दे, जो हमारे महापुरुषों ने पाई थी।'

वैद्य गुरुदत्त का जन्म 1894 में लाहौर के एक मध्यमवर्गीय आर्यसमाजी परिवार में हुआ था। उनकी शिक्षा डी. ए. वी. स्कूल लाहौर में हुई और गवर्नमेंट कॉलेज, लाहौर से ही एम. एस. सी. पास की। बाद में लाहौर के डी. ए. वी. स्कूल में अध्यापक हो गये। उसी दौरान अमर शहीद सरदार भगत सिंह भी उनके छात्र रहे थे।

स्वतन्त्रता आन्दोलन और आर्यसमाज में सक्रिय होने के कारण आपको नौकरी छोड़नी पड़ी। आप अमेठी के महाराज कुंवर रणञ्जय सिंह के निजी सचिव रहे। आप जनसंघ के संस्थापकों में से एक थे। दिल्ली प्रदेश जनसंघ के प्रथम अध्यक्ष रहे और स्व. डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के प्रमुख सहयोगी रहे।

श्री गुरुदत्त की गिनती विश्व में सर्वाधिक पढ़े जाने वाले लेखकों में थी। उन्होंने लगभग 200 सामाजिक उपन्यासों की रचना की। आपकी लगभग 50 पुस्तकें वैदिक साहित्य तथा इतिहास विश्लेषण का मानदण्ड मानी जाती हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के सुधार वाद के वे आजीवन कट्टर-समर्थक रहे। यही कारण है कि उनके सभी उपन्यासों में कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में भारतीय-संस्कृति का स्पर्श मिलता है।

उन्होंने अपने उपन्यासों में परिवार और समाज का, कुछ में राजनैतिक कुचक्रों, तो कुछ में सांस्कृतिक वैभव के पतन का सजीव चित्रण किया है। उपनिषद्, दर्शन, ब्रह्मसूत्र और गीता आदि विषयों पर भी उनकी अनेक रचनायें चर्चित रहीं।

मानवीय और राष्ट्रीय-मूल्यों के लिए समर्पित जीवन, जिसमें देश-भक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी, की लेखन-यात्रा अपने अन्तिम दिनों में भी रुकी नहीं। आप इन दिनों अथर्ववेद पर लिख रहे थे। इतिहास पर लिखी गयी लगभग तीन हजार पृष्ठों की उनकी पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रही है।

डा० धर्मपाल
(आर्यसन्देश, 16-4-89)

मनुष्य किसे कहते हैं।

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि-लाभ को समझें, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महाअनाथ निर्बल और (गुणरहित) क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हों तथापि उसका नाश, अवनति, अप्रियाचरण सदा किया करे। अर्थात् जहाँ तक हो सके वहां तक अन्याय-कारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भले ही चले जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्यनेता गिरधर शर्मा 'सिद्ध'

पंडित गिरधर शर्मा 'सिद्ध' का विगत दिनों अलवर में निधन हो गया। सिद्ध जी एक महान् समाज सुधारक के साथ-साथ राजस्थान में मुस्लिम लीग की राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों को असफल करने वाले तेजस्वी आर्य नेता थे। आर्यवीर दल तथा हिन्दू महासभा के नेता के रूप में उन्होंने अलगाव वादी तत्वों का डटकर सामना कर राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त किया था। महर्षि दयानन्द, वीर सावरकर, भाई परमानन्द तथा महामना पंडित मदनमोहन मालवीय सिद्ध जी के प्रेरक रहे। वे जीवन के अंतिम क्षणों तक अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहे।

सिद्ध जी ने देखा कि स्वाधीनता से पूर्व अलवर में मेवों का बोल-बाला है। अलवर में लगने वाले मेले में विधर्मी गुण्डों द्वारा महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की घटना होती थी। सिद्ध जी ने आर्यवीर दल का गठन किया तथा उन्हें मेले में गुण्डों पर सतर्कता रखने का कार्य सौंपा, गुण्डे भागते नजर आए। तभी से सिद्ध जी की लोकप्रियता बढ़ती गयी। अलवर राज्य के प्रधानमंत्री डा. नारायण भास्कर खरे हिन्दू महासभा के नेता थे। उन्होंने शरारती मेवों की राजद्रोही गतिविधियों के उन्मूलन में सिद्ध जी की सहायता माँगी। वे सिद्ध जी के तेजस्वी व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थे।

सिद्ध जी हिन्दू महासभा के राजस्थान प्रान्त के अध्यक्ष रहे। अ. भा. कार्य-कारिणी के सदस्य रहे। वे वीर सावरकर जी तथा भाई परमानन्द जी के निकट सम्पर्क में आए। गोहत्या बन्दी, हिन्दी के प्रचार, हिन्दू संगठन जैसे कार्यों में वे आजीवन सक्रिय रहे।

महात्मा गांधी की हत्या के सिलसिले में उन्हें गिरफ्तार किया गया किन्तु वे अदालत से ससम्मान रिहा हो गये। बड़ी से बड़ी यातनाएं भी उन्हें अपने पथ से विचलित नहीं कर सकीं।

10 मई सन् 1957 को दिल्ली में 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की शब्तादी मनाई गई थी। क्रांतिकारियों के प्रेरणा स्रोत वीर सावरकर जी उस समारोह में मुख्य अतिथि थे। उस समय मैं अपने पिता श्री स्व. भक्त रामशरण जी तथा श्री वि. स. विनोद (सम्पादक 'प्रभात' मेरठ) के साथ दिल्ली गया था। उस समय सावरकर जी ने हिन्दू महासभा के कार्यकर्ताओं को अपनी ओर से जलपान पर बुलाया था। उन्होंने जब हमारे सामने सिद्ध जी को "अलवर का सिंह कहा" तो हमें पता चला कि सावरकर जी जैसी बिभूति भी उनसे कितना स्नेह करते थे।

सिद्ध जी महान गो-भक्त स्वामी रामचन्द्र वीर महाराज तथा उनके उत्तराधिकारी आचार्य श्री धर्मेन्दु जी के प्रति भक्ति भावना रखते थे। सिद्ध जी ने मुझसे कहा था—"वीर जी महाराज ने हिन्दू जागरण के क्षेत्र में रचनात्मक कार्य किया है"

सिद्ध जी जैसे सिद्धान्त-निष्ठ व्यक्ति बिरले ही होते हैं। वैदिक सिद्धान्तों की रक्षा के लिए सतत् संघर्षशील इस व्यक्तित्व के अवसान पर हार्दिक श्रद्धांजलि।

—शिवकुमार गोयल

(आर्यसन्देश, 16-4-89)

विद्वानों से अपील।

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं वे पक्ष पात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सबमें सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे से विरुद्ध बातें हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्तें-वर्त्तावें तो जगत् का पूर्णहित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेक विध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि ने, जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दुःखसागर में डुबा दिया है।

--महर्षि दयानन्द सरस्वती

महात्मा हंसराज

तपोनिष्ठ महात्मा हंसराज का जन्म 19 अप्रैल 1864 को होशियारपुर के बैजवाड़ा नामक स्थान में हुआ था। छात्र जीवन में ही हंसराज ने स्कूल से घर तक प्रतिदिन नंगे पांव पैदल चलकर तप, त्याग व परिश्रम का अभ्यास कर लिया था। महात्मा हंसराज ने अपने बड़े भाई श्री मुलक राज द्वारा केवल चालीस रुपये प्रति मास की सहायता स्वीकार कर स्वयं माता, पत्नी, दो पुत्र व पुत्रियों के आठ सदस्यों के परिवार का सारी आयु आर्थिक विपन्नताओं में पालन-पोषण कर सादगी व सरलता का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। हंसराज जी ने डी. ए. वी. महाविद्यालय में 25 वर्षों तक अवैतनिक कार्य कर निःस्वार्थ सेवा की अद्वितीय मिसाल कायम की। वर्षों तक महाविद्यालय के प्रधान रहे और तत्पश्चात् आर्य प्रादेशिक सभा के प्रधान पद को सुशोभित किया।

आज भारत ही नहीं विदेशों में भी महात्मा हंसराज द्वारा स्थापित डी. ए. वी. शिक्षण संस्थाओं का जाल बिछा है, जिन्होंने शहीदे आजम सरदार भगतसिंह सरीखी महान् विभूतियां पैदा कीं, जिन्होंने समाज, धर्म व जाति की अमूल्य सेवा की है। ऐसे महान् शिक्षा शास्त्री, त्यागमूर्ति महात्मा हंसराज को आज भी समस्त आर्य जगत् में "हंस-हंस के हंसराज ने तन, मन व धन लुटा दिया"—प्रेरक भजन के द्वारा बड़ी श्रद्धापूर्वक याद किया जाता है।

—मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 23-4-89)

राजर्षि रणञ्जय सिंह

स्वनाम धन्य राजर्षि रणञ्जय सिंह जी का 87 वर्ष की आयु में 4 अगस्त 88 की अर्द्धरात्रि के उपरान्त उनके अमेठी राजमहल में देहावसान हुआ। राजर्षि रणञ्जय सिंह जी मनुष्य रूप में देवता थे। 87 वर्ष की आयु में भी राजा साहब में नवयुवकों से अधिक कार्यक्षमता थी और देश तथा आर्यसमाज का कार्य करने की उद्दाम लालसा भी।

वे 1926 में केन्द्रीय धारा सभा के लिए चुने गए थे और तब से अनेकों बार लोकसभा व विधान सभा के सदस्य रहे, लेकिन आधुनिक नेताओं के कार्य एवं व्यवहार-शैली से बिल्कुल अलग। उन्होंने सदैव सत्य तथ्य व यथार्थ को प्राथमिकता दी। गोरक्षा, राष्ट्रभाषा हिन्दी आदि विषयों पर वे सत्ता पक्ष में रहते हुए भी निर्भीक होकर बोलते थे और सदैव सत्य का ही पक्ष लेते थे। उनका जीवन एक सन्त, तपस्वी, मनीषी, समर्पित आर्य कार्यकर्त्ता के ही रूप में बीता। वे 'आर्यसमाज' जैसे राष्ट्रवादी आन्दोलन के अपने बचपन से ही कार्यकर्त्ता बन गए और अपने इस रूप को मृत्युपर्यन्त बनाए रखा। वे कहा करते थे कि पहले मैं आर्य हूं उसके बाद और कुछ! वे दो बार आर्य प्रतिनिधि सभा उ. प्र. के प्रधान भी रहे। इस दौरान सारे प्रदेश का दौरा करके आर्यसमाज के आन्दोलन को गति प्रदान की। इस आयु में अस्वस्थ रहते हुए भी वे निरन्तर आर्यसमाज के कार्यक्रम में भाग लेते रहे।

राजा साहब एक उच्च कोटि के कवि, लेखक, समाज सुधारक व राज नेता थे उन्हें देखकर लगता था कि यह महामानव प्रागैतिहासिक काल का ऋषि है जिसकी नैतिकता, सच्चरित्रता, सेवा भावना, सदाशयता, स्पष्ट वक्तृता, धर्मनिष्ठा, सत्यप्रेम व मानवीयता असंदिग्ध है। शिक्षा के प्रसार में उनका योगदान कभी भी भुलाया नहीं जा सकेगा। प्राथमिक से लेकर स्नातकोत्तर महाविद्यालय की स्थापना करने व उनके भवन-निर्माण तथा अन्य विकास के कार्यक्रमों में जिस सदाशयता से उन्होंने अपने खजाने का मुंह खोल दिया, वह अनुपमेय है। ऐसे आर्य श्रेष्ठी को शत-शत प्रणाम।

—मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 27-8-89)

महात्मा भगत फूलसिंह

हरियाणा प्रदेश की पवित्र भूमि ने अनेक महापुरुष उत्पन्न किये हैं। उनमें महात्मा भगत फूलसिंह का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

भगत जी का जन्म जिला सोनीपत के ग्राम माहरा में 24 फरवरी 1885 को एक साधारण किसान श्री बाबर सिंह के घर में हुआ।

सन् 1908 में आप इसराना जिला करनाल में पटवारी बने। यहाँ आपका श्री प्रीतसिंह पटवारी से सम्पर्क हो गया। ये आर्यसमाज के विचारों के थे। इनके साथ श्री फूलसिंह जी पानीपत के आर्यसमाज मन्दिर में रविवार के सत्संग में सम्मिलित होने लगे।

समाज सुधार तथा आर्यसमाज के कार्य को पूरा समय देने के लिए आपने पटवारी पद से त्यागपत्र दे दिया।

आपने अपने ग्राम में अपनी 50 बीघे भूमि ऋषि दयानन्द के उद्देश्य को पूरा करने के लिए आर्यसमाज को दान कर दी। आप अपने ग्राम में गुरुकुल खोलना चाहते थे, परन्तु उन्हें ग्राम भैंसवाल के पास जंगल में गुरुकुल खोलने के लिए उचित स्थान मिल गया। और ग्राम वालों ने उनकी प्रेरणा पर 130 बीघे भूमि गुरुकुल के लिए दान में दे दी। अपने ग्राम की भूमि की आय से गुरुकुल संचालन का निश्चय किया और इसके उद्घाटन के लिए स्वामी श्रद्धानन्द जी को भैंसवाल आमन्त्रित किया। स्वामी जी ने हजारों नरनारियों की उपस्थिति में सन् 1919 में गुरुकुल की आधारशिला रखी।

गुरुकुल संचालन हेतु एक लाख रुपये संग्रह करना—

गुरुकुल का सारा खर्च दान से चलता था और छात्रों से किसी प्रकार का शुल्क तथा भोजनादि व्यय नहीं लिया जाता था। इस प्रकार गुरुकुल पर कर्ज हो गया। कर्ज को उतारने तथा स्थायी कोष बनाने के लिए भगत जी ने एक लाख रुपया दान संग्रह करने का व्रत लिया और घोषणा कर दी कि "जब तक यह राशि संग्रह न होगी तब तक मैं सूर्योदय से सूर्यास्त तक खड़ा रहूँगा, बैठूंगा नहीं। केवल एक समय पाव भर जौ के आटे का भोजन करूंगा। भगत जी तथा उनके साथी ग्रामों में घूमे और एक लाख रुपया संग्रह करके गुरुकुल के कोष में जमा करवा दिया। उनके इस तपस्या तथा लगन का सारे क्षेत्र में बहुत प्रभाव पड़ा और गुरुकुल अपने पैरों पर खड़ा हो गया। यह 1928 की घटना है।

आपने जहां लोहारू में आर्यसमाज के सत्याग्रह तथा हैदराबाद धर्मयुद्ध के लिए महान् कार्य किया, वहां हरियाणा क्षेत्र में दलितोद्धार तथा मूले जाटों की शुद्धि के लिए अनशन तक किया।

श्रावण बदी द्वितीया सम्वत् 1992 तदनुसार 14 अगस्त 1949 को महात्मा भगत फूलसिंह जी को कन्या गुरुकुल खानपुर में चार मुसलमानों ने गोलियों से शहीद कर दिया।

महात्मा फूलसिंह के बलिदान के प्रभाव से आज कन्या गुरुकुल हरियाणा प्रदेश में महिलाओं की सबसे बड़ी संस्था बनकर उनकी कीर्ति-पताका फहरा रही है। उनकी पुण्य-आत्मा को शत-शत नमन।

—मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 27-8-89)

मनुष्य नहीं पशुओं का बड़ा भाई।

जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दु:ख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभाव-युक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता कहता है, और जो स्वार्थवश होकर परहानिमात्र करता रहता है, वह जानों पशुओं का भी बड़ा भाई है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

पं॰ शिवकुमार शास्त्री

यह वाक्य कि पं. शिवकुमार शास्त्री नहीं रहे, कितना हृदय विदारक हो सकता है, पाठक सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। दिल्ली के पाठक ही नहीं, सम्पूर्ण भारत के पाठक, अन्य देशों के वे लोग जो आर्यसमाज में रुचि रखते हैं, पं॰ शिवकुमार शास्त्री के नाम से परिचित हैं। पं॰ जी की भाषण कला अपने आप में अनूठी थी। वे अपने विषय का प्रतिपादन सरस शैली में किया करते थे। वे अद्वितीय विद्वान् थे। वेदों के अनुपम व्याख्याता थे, आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता थे, दिल्ली में ही नहीं सर्वत्र आर्यसमाजों के मंचों की शोभा थे। उनकी डायरी में महीनों पहले प्रविष्टि हो जाया करती थी, पर फिर भी वे स्वभावत: विनीत और सरल थे। "श्रुति सौरभ" उनकी अमर कृति है। उसके प्राक्कथन में उन्होंने लिखा था—"मैं कभी न प्रखर वक्ता समझा गया हूं और न गम्भीर विद्वान्।" ऐसे विनम्र थे हमारे पं॰ शिवकुमार जी शास्त्री। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा तालकटोरा में आयोजित महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह में उन्हें कहा गया कि जब तक मुख्य अतिथि महामहिम राष्ट्रपति जी आयें, तब तक उन्हें ही अपना भाषण जारी रखना है और वह उद्भट सहर्ष इस कठिन कार्य का निर्वाह, अपनी सुपरिचित सरस, सरल एवं प्रवाहपूर्ण शैली में करता रहा। उनकी वक्तृता को हजारों लोग मन्त्रमुग्ध हो सुनते रहे। ऐसा विद्वत्ता और वाग्मिता का अपूर्व सम्मिश्रण उनके व्यक्तित्व में आप्यायित था। औदार्य, सहृदयता, अनुशासनप्रियता, व्यवहार-शुचिता आदि गुणों से विभूषित शास्त्री जी स्पृहणीय मानव थे। उनके सम्पर्क में जो भी आया, वह उनका हो गया। इस वर्ष हमारे एक समारोह में उपराष्ट्रपति पं. शंकर दयाल शर्मा आए। वे उनकी वक्तृता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अस्वस्थ होते हुए भी हम सभी कार्यकर्त्ताओं का उन्हें लाने के लिए अपनी बधाई भेजी।

पं. शिवकुमार शास्त्री का जन्म 15 अक्तूबर 1915 को ग्राम आर्यनगर पो. शाहपुर जिला अलीगढ़ में हुआ था। आठ वर्ष की आयु में पं. धुरेन्द्र शास्त्री ने उनका उपनयन कराया और वे सर्वदानन्द साधु आश्रम में प्रविष्ट हुए। बाद में वे गुरुकुल महाविद्यालय में सूर्यकुण्ड बदायूं में प्रविष्ट हुए। 1934 में वहीं से विद्या-भूषण की उपाधि लेकर स्नातक हुए। इसके बाद उन्होंने नित्यानन्द वेद विद्यालय वाराणसी और क्वींस कालेज वाराणसी में अध्ययन किया और 'शास्त्री', 'काव्यतीर्थ' तथा 'व्याकरणतीर्थ' की उपाधियाँ प्राप्त कीं।

सन् 1937 से 44 तक वे गुरुकुल धाम जेहलम पंजाब में आचार्य रहे। 1945 से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में महोपदेशक रहे। सन् 1950 से 1963 तक उन्होंने पंजाब सभा की ओर से दिल्ली में वेदप्रचार अधिष्ठाता का दक्षतापूर्वक दायित्व निभाया। 1964 से 1967 तक वे गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में मुख्याधिष्ठाता रहे। 1967 से 1976 तक वे चौथी और पांचवीं लोकसभा के सदस्य भी रहे। 1970 से 74 तक वे गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन के कुलपति भी रहे। सार्वदेशिक सभा के अन्तरंग सदस्य वे लम्बे समय तक रहे। वे धर्मार्य सभा तथा दयानन्द पुरस्कार समिति के भी सदस्य रहे। वे 1974-75 में आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश के प्रधान रहे।

उनकी विद्वत्ता के फलस्वरूप उन्हें दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली तथा हरियाणा आर्य प्रतिनिधि सभा ने समय-समय पर सम्मानित किया। आर्यसमाज दीवान हाल, लाजपत नगर, सदर बाजार तथा हनुमान रोड़ में भी उन्हें सम्मानित किया गया।

वह अजातशत्रु विद्वान् रविवार 3 सितम्बर 1989 को अपने पार्थिव शरीर को छोड़कर अनन्त में विलीन हो गया।

आर्यसन्देश परिवार की ओर से उनकी आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना तथा परिजनों को इस दारुण दुःख को सहन करने की शक्ति की कामनाएँ।

—डा. धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 10-9-89)

नवीन मत चलाना मेरा अभिप्राय नहीं।

मेरा कोई नवीन कल्पना का मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्व० महात्मा नारायण स्वामी

पूज्यपाद महात्मा नारायण स्वामी जी का जीवन आर्यसमाज का उज्ज्वल इतिहास है। आर्यसमाज को सजीव रखने, अनुप्राणित करने, संघर्ष के लिए सक्षम बनाने और बलिदान के लिए सतत सन्नद्ध रखने में स्वामी जी का सर्वोत्तम योगदान है। उनकी अपूर्व कर्मठता, संगठन-क्षमता, प्रत्युत्पन्नमतित्व, अदम्य उत्साह, निर्भीकता, गुणग्राहिता और शास्त्र-विलक्षणता समस्त आर्यजगत् द्वारा सदैव प्रशंसनीय रही है।

श्रीमद्दयानन्द-जन्मशताब्दी, मथुरा भूमण्डल के आर्यों का सबसे पहला महोत्सव था, जिसका सुप्रबन्ध आज भी आर्यजगत् की प्रशंसा का विषय बना हुआ है। हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह (धर्मयुद्ध) आप के ही नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ था और आपके ही नेतृत्व में उसमें विजयश्री प्राप्त हुई थी। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के जिस पौधे को अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने लगाया था, उसको महात्मा नारायण स्वामी जी ने निरन्तर 14 वर्ष पर्यन्त प्रधान पद पर रहकर, हरा-भरा किया था। संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा और गुरुकुल वृन्दावन (मथुरा) को, नव-अंकुरित पौधों की अवस्था से हरे-भरे पुष्प-पल्लवित वृक्षों की अवस्था तक पहुँचाना स्वामी जी के ही सदुद्योग का सुफल था। सत्यार्थप्रकाश पर लगे प्रतिबन्ध के निराकरण के लिए 1947 ई. में जीवन के अन्तिम क्षणों में सिन्ध-सत्याग्रह काल, स्वामी जी की चारित्रिक उदात्तता का परिचायक है। कन्या गुरुकुल देहरादून तथा कन्या गुरुकुल सासनी पर उनकी कृपा दृष्टि, स्त्री-शिक्षा के प्रति उनकी सतत जागरूकता की द्योतक है।

स्वामी जी महाराज ने जो उच्चकोटि का आर्य-साहित्य दिया है, वह आर्य समाज की बहुमूल्य निधि है। उन्होंने दो दर्जन से अधिक ग्रन्थों की रचना की। ईश, केन आदि 11 उपनिषद् की व्याख्या, योगदर्शन की टीका, आत्मदर्शन, कर्म रहस्य, वेद रहस्य, मृत्यु और परलोक, वेद और प्रजातन्त्रीय व्यवस्था, वैदिक साम्यवाद, कर्तव्य-दर्पण, विद्यार्थी-जीवन रहस्य, वैदिक सन्ध्या रहस्य, प्राणायाम-विधि, वैदिक धर्म। "विद्यार्थी-जीवन रहस्य" की लोकप्रियता को पहचान कर, सार्वदेशिक सभा ने तो "सार्वदेशिक" के विशेषांक के रूप में इस पुस्तिका का एक बार में ही एक लाख का संस्करण निकाल दिया था, जो हाथों-हाथ बिका भी था।

ऐसे उच्च व्यक्तित्व और निस्पृह समाजसेवी महात्मा नारायण स्वामी जी की पुण्य स्मृति (15 अक्तूबर) हमारे लिए प्रणम्य है।

—मूलचन्द गुप्त

(आर्यसन्देश, 15-10-89)

श्यामजी कृष्ण वर्मा

हर्ष का विषय है कि क्रांतिकारियों के सिरमौर एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त स्व. श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा द्वारा की गयी महान् सेवाओं के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए, भारत सरकार की ओर से भारतीय डाक-विभाग ने एक विशेष तिरंगा डाक टिकट जारी किया है। यह टिकट श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा के 132 वें जन्मदिवस पर 4 अक्तूबर, 1989 को उनके जन्मस्थान मांडवी ग्राम, कच्छ जिला में जारी किया गया है। इस अवसर पर विशेष प्रथम दिवस आवरण एवं विवरणिका भी प्रकाशित किए गए हैं।

इस अवसर पर प्रकाशित विवरणिका का अविकल प्रारूप निम्न प्रकार है—

श्यामजी कृष्ण वर्मा
(1857—1930)

श्यामजी कृष्ण वर्मा उन कट्टर राष्ट्रवादियों और देशभक्तों में से थे जिन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के लिए देश से बाहर रह कर काम किया। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दिनों में उन्होंने अधिकांशतः यूरोप में घटनाओं से भरा जीवन बिताया और क्रांतिकारियों की सहायता की तथा उनके कार्यकलापों के लिए एक केन्द्र स्थापित किया।

श्यामजी कृष्ण वर्मा का जन्म 4 अक्तूबर, 1857 को गुजरात के कच्छ जिले के मांडवी ग्राम में हुआ। बाल्यकाल में ही उन के ऊपर से माता का साया उठ गया। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा मांडवी की एक ग्रामीण पाठशाला में तथा हाई स्कूल शिक्षा भुज में हुई। वे एक असाधारण प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे। उन्होंने संस्कृत का गहरा ज्ञान प्राप्त किया, जिसके लिए उन्हें पंडित की उपाधि से विभूषित किया गया। 1875 में उनका विवाह बम्बई के एक धनी व्यापारी, सेठ छबीलदास लालूभाई की पुत्री भानुमती से हुआ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती से श्याम जी कृष्ण वर्मा अत्यन्त प्रभावित हुए और बम्बई आर्यसमाज के प्रथम अध्यक्ष बन गए। बाद में उन्होंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में सेवा आरम्भ की और बलिओल कालेज में संस्कृत के सहायक प्रोफेसर नियुक्त किए गए। बाद में वे टेम्पल इन में शामिल हुए और प्रथम भारतीय बार-ऐट-लॉ हुए। जनवरी, 1888 में वे भारत लौटे और कुछ समय के लिए रतलाम के दीवान की नौकरी की उन्होंने अजमेर में वकालत शुरू की और एक वकील के रूप में ख्याति प्राप्त की। वे अजमेर शहर की नगरपालिका के सदस्य बने। उन्होंने पहले अजमेर के

दीवान और बाद में जूनागढ़ के दीवान के रूप में काम किया।

जनवरी, 1905 में वे इंग्लैण्ड लौटे और सक्रिय राजनीति में भाग लेने लगे। उन्होंने एक मासिक 'इण्डियन सोसिओलॉजिस्ट' का प्रकाशन आरम्भ किया जो क्रांतिकारी विचारों का एक माध्यम बन गया। भारत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अपनी आवाज उठाने के लिए फरवरी 1905 में उन्होंने इण्डियन होम रूल सोसाइटी की स्थापना की। उन्होंने इंग्लैन्ड की यात्रा करने वाले भारतीयों की सहायता करने के लिए लन्दन में 'इण्डिया हाउस' की स्थापना की। विनायक दामोदर सावरकर और उनके भाई गणेश, लाला हरदयाल, वीरेन चट्टोपाध्याय और बी. बी. एस. अय्यर 'इण्डिया हाउस' के उपकृतों में से थे।

उन्होंने पैम्फलेट छपवा कर, पुस्तकें लिखकर और भाषण देकर भारत में ब्रिटिश शासन का कड़ा विरोध किया। उनकी राजनीतिक गतिविधियों के कारण उन्हें इंग्लैण्ड छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया गया। वे पेरिस गए जहां भारतीय स्वतन्त्रता का समर्थन करते हुए उन्होंने अपनी गतिविधियां जारी रखीं। द्वितीय विश्व युद्ध के आरंभ होने से वे पेरिस में नहीं ठहर सके और उन्हें स्विट्जरलैण्ड में जेनेवा जाना पड़ा जहां उन्होंने अपना शेष जीवन बिताया। 31 मार्च, 1930 को जेनेवा में उनका देहांत हो गया।

डिजाइनों का विवरण

डाक-टिकट का डिजाइन श्याम जी कृष्ण वर्मा मेमोरियल ट्रस्ट द्वारा उपलब्ध कराए गए उनके एक फोटोग्राफ के आधार पर तैयार किया गया है।

प्रथम दिवस आवरण में लंदन में उस समय पेड़ों की झुरमुट से दीखता इण्डिया हाउस दिखाया गया है। विरूपण का डिजायन सुश्री अलका शर्मा ने तैयार किया है।

—मूलचन्द गुप्त

(आर्यसन्देश, 15-10-89)

मेहता जैमिनी

एकाधिक बार विदेश यात्रा कर वैदिक धर्म के संदेश को विश्वव्यापी बनाने वाले मेहता जैमिनी आर्योपदेशक को सम्भवतः नई पीढ़ी के आर्यसमाजी भूल गये होंगे। मेहता जी का जन्म 11 अक्टूबर 1871 ई. को पश्चिमी पंजाब के कमालिया नगर में हुआ। इनके पिता का नाम श्री रामदत्तमल था। प्रारम्भिक शिक्षा के अनन्तर आपने शिक्षा विभाग से कार्य प्रारम्भ किया। आर्यसमाज में प्रविष्ट होकर उसके प्रचार कार्य में संलग्न हो गये। आपकी विदेश यात्राओं का विवरण इस प्रकार है। सर्वप्रथम आपने 1922-23 में ब्रह्म देश की यात्रा की और वहाँ प्रचार कार्य किया। आपकी द्वितीय प्रचार यात्रा 1925 में सम्पन्न हुई जिसमें आपने पुनः ब्रह्मा और तदनन्तर मारीशस द्वीप में वैदिक धर्म का संदेश प्रसारित किया। फरवरी 1926 में आप अपनी तृतीय समुद्र यात्रा पर निकले और दिसम्बर 1926 तक ब्रह्मा, स्याम, सिंगापुर, मलाया तथा सुमात्रा द्वीप निवासियों को आर्य संस्कृति का दिव्य सन्देश सुनाते रहे। चतुर्थ यात्रा फीजी और न्यूजीलैण्ड की हुई। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं पर आपका समान अधिकार था और आप भारतीय धर्म, सभ्यता, संस्कृति साहित्य पर प्रभावपूर्ण ढंग से व्याख्यान दिया करते थे।

16 दिसम्बर 1918 को पोर्ट ऑफ स्पेन (ट्रिनीडाड) में उतर कर मध्य अमेरिका (ईस्ट ईण्डीज) में आपने प्रचार कार्य किया। पुनः दक्षिण अमेरिका के ब्रिटिश गायना आदि प्रान्तों में गये। तत्पश्चात् डच गायना का भी भ्रमण किया। मेहता जी की पाँचवीं विदेश यात्रा इण्डोनेशिया, चीन तथा जापान की थी। छठी यात्रा के दौरान वे अफ्रीका गये और मोम्बासा, दारेसलाम, केन्या, युगाण्डा, टैगानिका आदि में प्रचार करते रहे। वैदिक प्रचारक का बाना धारण करने से पूर्व मेहता जी 1920 ई. तक वकालत भी करते रहे परन्तु आर्यसामाजिक गतिविधियों में आपने सदा भाग लिया। आपके द्वारा रचित ग्रंथों की एक सूची यहां उपस्थित की जा रही है। मेहता जी की अप्रकाशित पुस्तकें—1. दीवान (अहकर 1881 से 1892 तक रचित कविताओं का संग्रह), 2. धर्म किसे कहते हैं? (रचनाकाल 1890), 3. भक्ति व अन्धविश्वास (1889 ई.), 4. वैदिक विद्या (1891), 5. इम्तिहान बी. ए. में नाकामयाबी (1895), 6. इम्तिहान वकालत में नाकामयाबी (1900 ई.), 7. मेला चरागां व शारामार का इम्तिहान (1901), 8. सांख्य शास्त्र का उर्दू अनुवाद (1902), 9. आत्मा पर जमीर की पहली चोट (1901), 10. क्या आर्यसमाज धार्मिक सभा है? (1900), 11. इबतालुल इस्लाम, 12. राजतरंगिणी का उर्दू अनुवाद, 13. पुरुषार्थ-

प्रकाश (उर्दू), 15. बाइबिल इन इण्डिया, (उर्दू) 15. कमालिया के हालात साबका. 16 निबाही राम की मौत, 17. दरबार साहब अमृतसर, 18. काइनाकन जहाज की तबाही, 19. तारीख साबुद्दीन इस्लाम (1921), 20. क्या हजरत ईशा दीवाना था ? (1922 ई.)

निम्न सूची प्रकाशित ग्रंथों की है—1. पं. लेखराम की शहादत्त लेखराम मेमोरियल कमेटी द्वारा 1897 में छपी, 2. पं. लेखराम की कुरबानी के नतायद, 3. मिर्जा कादयानी और उसके अलहामात, 4. मिरजा साहब की पेशीन गोइयां, 5. मिरजा साहब और पं. लेखराम का मुकाबिला, 6. मिरजा साहब की बेजा शेखियां 7. खुदा और शैतान का मुकाबला 8. स्त्री शिक्षा 9. सच्चादान रहेमान प्रेम देवी सोसाइटी मुलतान द्वारा 1902 में छपी 10. यज्ञ और कुरवानी, 11. ब्रह्मचर्य की अजमत, 12. ओम की माहियत, 13. लड़का या लड़की, 14. दीवाचा संस्कारविधि (संख्या 10 से, 14. तक मनुष्य सुधार प्रेस मुलतान से 1902 में छपी), 15. संस्कार दर्पण, 16. भारत से हमें क्या शिक्षा मिलती हैं ? नवजीवन विद्या (डा. कावन की पुस्तक का अनुवाद), 18. हिन्दू कौम मर रही है, 19. ब्रिटिश राज्य की बरकतें, (1919) 20. महात्मा गांधी का पैगाम (1922). 21. तालीम व कौमियत (1921), 22. चर्खे की करामात, 23. चौके की करामात, 24. चक्की की करामात, 25. दरामद बरामद तिजारत हिंद, 26. वेदों का महत्त्व (1924), 27. संस्कृत भाषा का महत्त्व, 28. हिन्दू जाति की अवनति के कारण 29 हिन्दू संघटन ।

मेहता जी अपनी यात्रा विषयक पुस्तकों के कारण विशेष रूप से स्मरण किये जायेंगे । उन्होंने अपनी विदेश यात्राओं के संस्मरणों को निम्न पुस्तकों में लिखा—1. मारीशस यात्रा, 2. स्यामदेश की यात्रा (1927), 3. फीजी देश की यात्रा 4. दक्षिण अमेरिका की यात्रा तणा वैदिक धर्म प्रचार, 5. पाताल देश की यात्रा (1930), 6. उत्तरी अमेरिका की यात्रा, 7. जापान दर्पण (1930), 8. इण्डोनेशिया की यात्रा (1931), 9. दक्षिण अफ्रीका की यात्रा तथा वैदिक धर्म प्रचार, 10. विदेशों में आर्यसमाज के प्रचार का प्रभाव (1929) । ये सभी ग्रन्थ प्रेमी प्रेस मेरठ अथवा प्रेम पुस्तकालय एवं आर्य पुस्तकालय आगरा से छपे । आपके द्वारा रचित कतिपय अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं—1. अमेरिकन लेडी व भारत माता, इसमें मिस कैथरिन मेयो रचित मदर इण्डिया पुस्तक का उत्तर है, 2. जगद्गुरु भारत, 3. दयानन्द का संसार पर जादू, 4. उपनिषदों का महत्त्व, 5. जावा में पाषाण चित्र लिपि रामायण, 6. संसार का आगामी धर्म क्या होगा ? आपने उर्दू में निम्न ग्रन्थ लिखे—1. अमेरिकन के दिलचस्प हालात, 2. अमेरिकीलेड़ी, 4. न्यूजीलैण्ड व अमेरिका, 4. जगद्गुरु भारत, 5. आइन ए जापान 6. इण्डोनेशिया, 7. औरगंजेब की जिंदगी का रोशन पहलू, 8. आर्यसमाज का महत्त्व, 9. वेदों का महत्त्व । अंग्रेजी में आपने Vedic Mission in Gentral America पुस्तक लिखी तथा पं. हरिप्रसाद तथा श्रीराम भारती ने आपकी विदेशी यात्राओं का विवरण Vedic Propaganda in Central America तथा Vedic Mission in British East Africa शीर्षक पुस्तकों में लिखकर प्रकाशित

किया। आपकी कतिपय अन्य पुस्तकें प्रकाशन की प्रतीक्षा में थीं, परन्तु उनका मुद्रण हुआ या नहीं, निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। इनकी सूची इस प्रकार है—1. अफ्रीकी यात्रा, 2. मेरा भूगोल भ्रमण, 3. सत्यार्थप्रकाश का फारसी अनुवाद (यह अनुवाद 1932 में तैयार हुआ), 4. संदेश जैमिनी 5 गोरक्षा, 6. वेदमन्त्रों की व्याख्या, 7. वेद में पितृ, अग्नि, वरुण की व्याख्या, 8. शराबखोरी के भयानक परिणाम।

मेहता जी द्वारा रचित तथा प्रकाशित कुछ अन्य छोटी पुस्तिकाओं का उल्लेख इस प्रकार है—संस्कार महत्त्व, क्या वृक्षों में जीव है? नामकरण संस्कार, चूड़ाकर्म संस्कार। मांस विरोध, मुक्ति या निजात। आपने आर्य धर्मरक्षक पत्र लाहौर का सम्पादन किया। 1902 में मुलतान से मनुष्य सुधार नामक एक अन्य पत्र प्रकाशित किया जो 1900 तक चलता रहा।

—डा० भवानीलाल भारतीय
(आर्यसन्देश, 22-10-89)

सत्यार्थ-प्रकाश का अभिप्राय

यद्यपि इस ग्रन्थ को देखकर अविद्वान लोग अन्यथा ही विचारेंगे तथापि बुद्धिमान् लोग यथायोग्य इसका अभिप्राय समझेंगे, इसलिये मैं अपने परिश्रम को सफल समझता और अपना अभिप्राय सब सज्जनों के सामने धरता हूं। इसको देख दिखलाके मेरे श्रम को सफल करें। और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करना मेरा वा सब महाशयों का मुख्य कर्तव्य काम हैं। सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करे।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी

अब्राह्मण घर में जन्म लेकर तथा उर्दू, फारसी की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करके भी कोई व्यक्ति वेद का प्रकाण्ड विद्वान् बन सकता है तथा परिपक्व आयु में संस्कृत का अध्ययन कर अथर्ववेद संहिता पर भाष्य की रचना कर सकता है, इस तथ्य को आर्यसमाज की पुरानी पीढ़ी के विद्वान् पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने चरितार्थ किया। त्रिवेदी जी का जन्म 3 नवम्बर 1848 ई. को अलीगढ़ जिले के शाहपुर ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम लाला कुन्दन लाल सक्सेना था। पाँच वर्ष की आयु में ही उन्होंने करीमा, खालिक़ बारी आदि फारसी की प्रारम्भिक पुस्तकें समाप्त कीं। 1857 में जब सिपाही संघर्ष की लपटों ने पश्चिमोत्तर प्रदेश (उत्तर प्रदेश) के नागरिक जीवन को अशान्त बना दिया, क्षेमकरण जी के अध्ययन में किञ्चित् व्याघात उत्पन्न हुआ, परन्तु शान्ति होने पर वे पुनः फारसी पढ़ते रहे तथा अलीगढ़ के अंग्रेजी स्कूल में प्रविष्ट होकर फारसी के साथ अंग्रेजी तथा संस्कृत का भी अभ्यास किया।

1871 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की, पुनः आगरा कालेज आगरा में एफ. ए. की कक्षा में प्रविष्ट हुए परन्तु छः मास पश्चात् ही घर की आर्थिक विवशताओं के कारण 1872 में उन्हें अध्यापक का पद स्वीकार करना पड़ा। 1873 में वे मुरादाबाद आये। यहां 1877 में उन्हे स्वामी दयानन्द के सर्वप्रथम दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय स्वामी जी के 5-6 व्याख्यान मुरादाबाद में हुए थे। क्षेमकरणदास का यज्ञोपवीत संस्कार स्वयं स्वामी जी के कर कमलों द्वारा हुआ तथा उन्हें कुछ दिनों तक संस्कृत भी स्वामी जी ने ही पढ़ाई। ऋषि दयानन्द जी ने क्षेमकरण जी से यह आश्वासन लिया था कि वे निकट भविष्य में संस्कृत का सर्वाङ्गीण अध्ययन करेंगे तथा वेद पर भाष्य भी लिखेंगे। त्रिवेदी जी ने अपने गुरु को दिये वचन को पूरा कर दिखाया। वे न केवल संस्कृत के व्युत्पन्न पण्डित ही बने अपितु उन्होंने सम्पूर्ण अथर्व संहिता तथा उसके गोपथ ब्राह्मण पर विस्तृत भाष्य भी लिखा।

20 जुलाई 1879 को स्वामी जी द्वितीय बार मुरादाबाद आये। इस बार उनकी प्रेरणा से मुरादाबाद नगर में आर्यसमाज की स्थापना हुई और त्रिवेदी जी उसके सभासद् बन गये। 1880 से 1884 तक वे इस समाज के मन्त्री भी रहे।

संस्कृत अध्ययन और वेद परीक्षा—1893 में क्षेमकरण ने पंजाब विश्वविद्यालय की प्राज्ञ परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् पं. ठाकुर प्रसाद व्याकरणाचार्य से उन्होंने

योगदर्शन पढ़ा तथा पं. भवानीदत्त शास्त्री से पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा के ग्रन्थ पढ़े। ऋग्वेद का उन्होंने विशेष रूप से अध्ययन किया। वे राज्य सेवा के सिलसिले में जोधपुर आये और यहाँ उन्होंने स्वामी गिरानन्द, स्वामी अच्युतानन्द, स्वामी प्रकाशानन्द तथा पं. लालचन्द शर्मा विद्या भास्कर से व्याकरण, निरुक्त तथा वेदों का अध्ययन किया। प्रयाग में पं. रामजीलाल शर्मा से सामवेद पढ़कर सन् 1908 में बड़ौदा से उन्होंने वेद परीक्षा उत्तीर्ण की। कहते हैं कि महाराजा बड़ौदा के वेद विद्यालय से उन्होंने चारों वेदों की परीक्षा उत्तीर्ण की। ब्राह्मणों ने उन्हे 'त्रिवेदी' की उपाधि से तो विभूषित किया, परन्तु अथर्ववेद की उत्तीर्णता का प्रमाणपत्र नहीं दिया। तब इन्होंने निश्चय किया कि अपने शेष जीवन में अथर्ववेद का भाष्य करेंगे। 1911 में त्रिवेदी जी गुरुकुल कांगड़ी आये और सर्वशास्त्र निष्णात गुरुवर काशीनाथ जी से ऋग्वेद तथा अथर्ववेद का अध्ययन करते रहे। इससे पूर्व ही उन्होंने अथर्ववेद का भाष्य लिखना प्रारम्भ करा दिया था। उसका संशोधन भी पं. काशीनाथ जी से कराते थे। उस समय गुरुकुल में वेदों के एक अन्य उत्कृष्ट विद्वान् पं. शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ वेद के प्राध्यापक थे। उनसे श्री त्रिवेदी जी ने भाष्य लेखन में सहायता ली थी। 1911 में उन्होंने बड़ौदा से ही ऋग्वेद और अथर्ववेद की परीक्षा भी उत्तीर्ण की।

अथर्व भाष्य लेखन—यह उनकी साहित्य साधना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था। इसमें सहयोग देने के लिए उन्होंने वैतनिक पण्डितों की सेवायें भी लीं। अथर्व भाष्य प्रारम्भ में मासिक पत्र के रूप में प्रकाशित होता था। पंजाब संयुक्त प्रान्त की सरकारों तथा उत्तर प्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा उन्हें इस कार्य के लिए मासिक अनुदान भी मिलता था, परन्तु वह सब मिलाकर 100 रु. मात्र ही होता था। अथर्ववेद भाष्य का प्रथम खण्ड 1868 वि. (1912 ई.) में प्रकाशित हुआ। 1921 में यह समाप्त हुआ। उस समय समग्र 20 काण्डों के भाष्य का मूल्य 48 रु० था। भाष्य के मासिक ग्राहक विदेशी लोग भी थे।

गोपथ ब्राह्मण भाष्य—अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण का भाष्य भी त्रिवेदी जी ने लिखा जो 1981 वि. में प्रकाशित हुआ। "अथर्ववेदभाष्ये संहितायाः पदानां वर्णानुक्रमसूचीपत्रम्" शीर्षक से उन्होंने अथर्ववेद के पदों की सूची भी तैयार की जो 1978 वि. में नारायण यन्त्रालय, प्रयाग से छपी। उन्होंने यजुर्वेदान्तर्गत रुद्राध्यायों का संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी में अनुवाद किया तथा हवन मन्त्रों पर भी संस्कृत में भाष्य लिखा। "वेदविद्याएँ" शीर्षक से इनका एक अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ, जो गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में व्याख्यान रूप में प्रस्तुत किया गया था। इसमें वेदों के विमान, नौका, अस्त्र-शस्त्र, व्यापार, गृहस्थ, अतिथि, सभा, ब्रह्मचर्यादि विषयों के सूक्तों का मार्मिक विवेचन किया गया था।

—डॉ. भवानीलाल भारतीय

(आर्यसन्देश, 12-11-89)

पं॰ इन्द्र विद्यावाचस्पति

गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों ने राष्ट्रीय जीवन के अनेक क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। उनके जीवन में बड़े-बड़े तूफान भी आए और उन्हें अनेक सफलताएं भी मिलीं। इन सफलताओं पर उन्होंने कभी गर्व नहीं किया। विनम्रता उनका सहज स्वभाव ही रहा। गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक संसारी मोहमाया से विरक्त ही रहते हैं। यह विरक्ति उन्हें आचार्य स्वामी श्रद्धानन्द से विरासत में मिली है। अनेक लोग जीवन के संध्याकाल में अध्यात्म का सहारा लेते हैं, परन्तु ये लोग संसारी जीवन व्यतीत करते हुए भी सदा आध्यात्मिक ही रहे हैं। ऐसे ही महापुरुष थे पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति। जो गुरुकुल कांगड़ी के पहले स्नातक थे तथा इसके संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द जी के द्वितीय पुत्र थे। वे ऐसे नागरिक थे जो मानसिक स्वतन्त्रता, स्वाधीनता एवं राष्ट्र प्रेम की भावना से ओतप्रोत, चरित्रवान् तथा वैदिक धर्म, आर्य संस्कृति एवं भारतीय सभ्यता के रंग में रंगे थे। उनके मन में भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार एवं लोकसेवा की तड़प थी।

पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति को राष्ट्रप्रेम की भावना अपने पिता स्वामी श्रद्धानन्द से विरासत में मिली थी। बाल्यावस्था से ही उनके जीवन में राष्ट्रीय विचारों का सूत्रपात हो गया था। मन हीमन उन्होंने लोकमान्य तिलक को अपना राजनीतिक गुरू मान लिया था। उनके जीवन का ध्येय था समाज व राष्ट्र की सेवा। उनमें भारतीयता व राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी हुई थी। उन्होंने 'विजय' एवं 'अर्जुन' के माध्यम से अपनी ओजस्वी लेखनी द्वारा सत्याग्रह एवं राष्ट्रीयता का संदेश जन-जन तक पहुंचाने का प्रथम प्रयास किया। वे राजद्रोही के रूप में प्रसिद्ध हो गए थे और ब्रिटिश सरकार की आंखों में खटकने लगे थे। उन्हें अनेक बार जेल की यात्रा भी करनी पड़ी थी, परन्तु वे अपने ध्येय पर अडिग रहे। वे जीवन पर्यन्त देश, धर्म व जाति की सेवा में लगे रहे। सन् 1952 में उन्हें राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने सच्चे राष्ट्र सेवक और विद्वान के रूप में राज्य सभा का सदस्य मनोनीत कर के सम्मानित किया था।

पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति आर्यसमाज के सक्रिय कार्यकर्ता थे। वे वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के मंत्री व प्रधान आदि पदों पर बड़ी योग्यता से कार्य करते रहे। उन्होंने समय-समय पर आर्य जगत् का सही नेतृत्व व मार्ग दर्शन किया। वर्षों तक गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति एवं मुख्याधिष्ठाता के रूप में कार्य करते हुए संस्था को प्रगति पथ पर अग्रसर कर

कि उन्होंने आर्यसमाज की अभूतपूर्व सेवा की। उन्होंने आर्य महासम्मेलनों, आर्य रक्षा समिति, सत्यार्थ प्रकाश रक्षा समिति आदि का संचालन बड़ी सफलता के साथ किया।

पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति ने वैदिक साहित्य का अनुशीलन एवं वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार का कार्य तत्परतापूर्वक किया। सुप्रसिद्ध साहित्यकार, सम्पादक, राजनैतिक कार्यकर्ता एवं कुलपति पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति ने जहां उच्च कोटि की साहित्यिक तथा ऐतिहासिक कृतियों की रचना की है, वहां उन्होंने वैदिक ग्रन्थों का भी प्रणयन किया। उनकी पुस्तकें उपनिषदों की भूमिका और ईशोपनिषद् भाष्य अपना विशिष्ट स्थान रखती है। उनका संस्कृति के प्रति भी अत्यधिक अनुराग था। उन्होंने धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवम् ऐतिहासिक विषयों पर लगभग 25 पुस्तकें लिखी हैं, जो बहुत ही लोकप्रिय हुई। अपराधी कौन, सरला की भाभी, सरला, जमींदार आदि उपन्यास, महर्षि दयानन्द, नैपोलियन बोनापार्ट, प्रिंस बिस्मार्क, गेरीबाल्डी एवम् मेरे पिता आदि जीवन चरित्र, जीवन संग्राम, भारतीय संस्कृति का प्रवाह, आर्यसमाज का इतिहास, स्वतन्त्र भारत की रूपरेखा, मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण, आधुनिक भारत में वक्तृत्वकला की प्रगति आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों ने काफी ख्याति प्राप्त की है। 'मेरे पिता' पर उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत किया गया था।

पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उन्हें दिल्ली में हिन्दी पत्रकारिता का जनक माना जाता है। बाल्यावस्था से ही पत्रकारिता की ओर उनका झुकाव था, 7-8 वर्ष की आयु में उन्होंने "सत्यप्रकाशक" नामक हस्तलिखित पत्रिका निकाल कर एक अद्भुत कार्य किया था। उन्होंने "सद्धर्म प्रचारक" के साप्ताहिक संस्करण के सम्पादन का दायित्व सम्भाला और उसे काफी समय तक सफलतापूर्वक निभाया। आपके मन में दैनिक पत्र निकालने की इच्छा बहुत प्रबल थी जो आगे चलकर "विजय" के रूप में फलवती हुई। इस पत्र के माध्यम से वे दिल्ली के यशस्वी पत्रकार एवम् साहित्यकार के रूप में विख्यात हुए। उन्होंने साप्ताहिक सत्यवादी तथा दैनिक वैभव और भविष्य का सम्पादन भी किया। "अर्जुन" ने अपने जीवन काल में आर्यसमाज और सारे देश की जो सेवा की, वह सर्वविदित है। उन्होंने "अर्जुन" का प्रथम अंक सत्यवादी अर्जुन के साप्ताहिक के रूप मे निकाला था। आगे चलकर उन्होंने "अर्जुन" का नाम बदल कर "वीर अर्जुन" कर दिया। उन्होंने कुछ समय बम्बई के "नवराष्ट्र" और दिल्ली के "जनसत्ता" का भी सम्पादन किया था। इन पत्रों के माध्यम से उनकी स्वतन्त्र विचारधारा एवं राष्ट्रीय भावना खुल कर सामने आई। उनके सम्पादकीय व अग्रलेख भारतीयों के मन में राष्ट्रीय प्रेम व देश पर मर मिटने की भावना उत्पन्न करते थे। वे विरोधियों के हृदयों पर विष बुझे बाणों की तरह प्रहार करते थे। तत्कालीन शासक और उनके समर्थक पं. इन्द्र जी को अपना प्रबल शत्रु समझते थे। उन्हीं के प्रयत्नों से हिन्दी पत्रकार सम्मेलन भी प्रारम्भ हुआ और वे इसके दो बार प्रधान भी चुने गये।

पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति का जन्म 9 नवम्बर 1889 को जालन्धर में महात्मा मुन्शी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) के घर में हुआ था, और उनका निधन 23 अगस्त 1960 को दिल्ली में हुआ। वे गुरुकुल कांगड़ी में संस्कृत साहित्य, तुलनात्मक आर्य सिद्धान्त व इतिहास के अध्यापक 1914 में नियुक्त किये गये। उसके बाद उनकी जीवन यात्रा बढ़ चली। वे गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के मुख्याधिष्ठाता एवं कुलपति बने। उनका कार्यक्षेत्र अधिक समय दिल्ली में ही रहा। उन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सफलतापूर्वक सम्पादन किया। उन्होंने अनेक संस्थाओं का गठन भी किया। कांगड़ी गांव में एक पाठशाला की स्थापना की और दिल्ली में हिन्दू पब्लिसिटी ट्रस्ट स्थापित किया। वे दिल्ली स्वदेशी संघ के प्रधान, अस्पृश्यता निवारक लीग के महामंत्री, दलितोद्धार सभा के मंत्री, जिला व प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी दिल्ली के प्रधान, दिल्ली कांग्रेस कनवेंशन के स्वागताध्यक्ष राष्ट्र भाषा सुरक्षा परिषद् के स्वागताध्यक्ष, अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार संघ के प्रधान, अखिल भारतीय संस्कृति सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष, संघ लोक सेवा आयोग के परामर्शदाता, भारत के शिक्षा मन्त्रालय की विश्व कोष परामर्शदात्री समिति के सदस्य नियुक्त किये गये। 1952 से 1958 तक वे राज्यसभा के भी मनोनीत सदस्य रहे। राज्य सभा के सदस्य के रूप में उन्होंने भारतीय जनता को एक नई राष्ट्रीय चेतना प्रदान की। उनके हृदय में भारतीय वैदिक संस्कृति कूट-कूट कर भरी थी। और अपने देशवासियों को वे आत्मबलिदानी एवं नैतिक बनने की प्रेरणा देते रहे। उनकी पुस्तकें भारत के स्वाधीनता संग्राम का इतिहास, संस्कृत साहित्य का अनुशीलन, आत्मबलिदान, महर्षि दयानन्द जीवन की झांकियां, पं. जवाहरलाल नेहरू, सम्राट् रघु, हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति, मेरे पिता, मैं इनका ऋणी हूँ, लोकमान्य तिलक आदि सभी पाठकों को सच्चा मनुष्य बनने की प्रेरणा देती हैं। भारतीय संस्कृति व राजनीति, भारतीय संस्कृति का प्रवाह, राष्ट्रीयता का मूल मन्त्र, राजधर्म आदि पुस्तकों के माध्यम से उन्होंने भारतीय जनमानस में राष्ट्रीयता, सहयोग सद्भाव एवं एकता की भावना जगाने का सफल प्रयास किया। स्वाधीनता संग्राम के सिलसिले में उन्होंने कई बार जेल यात्राएँ भी कीं और अपने अखबार भी उन्हें बन्द करने पड़े। परन्तु उन्होंने भयभीत होकर कभी किसी प्रकार का समझौता नहीं किया। वे आजीवन भारतीय संस्कृति एवं आर्यसमाज के उन्नयन के लिए प्रयत्नशील रहे। राष्ट्रीय एवं आर्य नेता के रूप में प्रख्यात पं. इन्द्रजी को साहित्यवाचस्पति की उपाधि से भी सम्मानित किया गया था। उस उद्भट विद्वान् को उनकी जन्मशताब्दी के अवसर पर हम अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं।

—डा. धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 19-11-89)

पं० प्रकाशवीर शास्त्री

श्रीयुत पं. प्रकाशवीर जी शास्त्री आर्यजगत् के उन देदीप्यमान उद्‌भट वक्ताओं की शृंखला की कड़ी थे, जो स्वर्गीय श्री पं. चन्द्रगुप्त जी वेदालंकार का स्मरण अनायास ही करा देते थे। वे जब भी सार्वजनिक सभा में अथवा समाज मन्दिर में अपना भाषण व प्रवचन प्रारम्भ करते थे, तब श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर उसे सुनते थे एवं जब वे अपना भाषण समाप्त करते थे, तब श्रोताओं की स्थिति ऐसी हो जाती थी जैसे गंगा की प्रबल वेगवती धारा हिमालय से प्रारम्भ होकर अनेकानेक सहायक नदियों को आत्मसात करती हुई अथाह समुद्र में विलीन हो गई हो। श्रोताओं में वे चाहे किसी भी प्रान्त, जाति, सम्प्रदाय एवं वर्ग के हों, वे शास्त्री जी के विचारों को सुनकर आर्यसमाज एवं वैदिक सिद्धान्तों पर विचार करने हेतु बाध्य हो जाते थे।

विधि की विचित्र लीला है कि दोनों दिव्य पुरुषों को छोटी अवस्था में ही काल के क्रूर पंजे ने छीन लिया। शायद ऐसा नेक दिल, तपस्वी, त्यागी, मानवमात्र का कल्याण चाहने वाले, महामानवों की भगवान् के दरबार में आवश्यकता अधिक समझी गई।

आप जीवन पर्यन्त "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" की मूल भित्ति पर आरूढ़ होकर वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज की सुरक्षा-सेवा करते रहे। और उसके सफल जागरूक प्रहरी बने रहे। उत्तर प्रदेश आर्यप्रतिनिधि सभा के आप कई वर्षों तक अध्यक्ष और सार्वदेशिक सभा के उपाध्यक्ष रहे। अपने प्रतिभा पुंज के प्रकाश से समग्र आर्य जगत् के विविध पक्ष को वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के सिद्धान्तों और मान्यताओं के अनुकूल आलोकित किया।

हिन्दी अस्मिता की रक्षा के लिए प. प्रकाशवीर शास्त्री का योगदान अविस्मरणीय है। उन्होंने लाला रामगोपाल शालवाले, पं. ओमप्रकाश जी पुरुषार्थी, पं. नरेन्द्र जी आदि के साथ मिलकर नीतिमत्ता और कौशलपूर्वक हिन्दी सत्याग्रह का संचालन किया। यह इस बात का प्रमाण है कि राष्ट्रभाषा की रक्षा के लिए उन आर्य नेताओं ने अपना सर्वस्व बलिदान करने का संकल्प लिया था। इससे पूर्व हैदराबाद आर्य सत्याग्रह में भी उन्होंने अपने विद्यार्थी-काल में ही सक्रिय भाग लिया था। उन्होंने गोरक्षा के लिए भी पूरी शक्ति से सहयोग दिया था। यह काल उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के उत्कर्ष का काल था।

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधानकाल में उन्होंने सभा की हीरक जयन्ती मनाई। जिसमें पं. जवाहरलाल नेहरू भी सम्मिलित हुए थे। उनके द्वारा

आर्यसमाज शताब्दी समारोह का मेरठ, कानपुर तथा वाराणसी में भव्य आयोजन सदैव स्मरणीय रहेगा।

1953 में काश्मीर आन्दोलन के समय जिन युवकों ने विद्यार्थी-जगत् में जनमत को जगाया था उनमें श्री प्रकाशवीर शास्त्री का नाम प्रथम पंक्ति में था। तब वे केवल 31 वर्ष के थे। उनके पिता का नाम श्री दिलीपसिंह था और मूल निवास मुरादाबाद जिले में चन्दौसी (उ. प्र.) था। उन्होंने विद्याभास्कर एवं शास्त्री की परीक्षाएं गुरुकुल ज्वालापुर (हरिद्वार) एवं वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की थीं।

प्रारम्भ से ही श्री शास्त्री एक शिक्षाविद् समाजसेवी थे। उनमें अनुसंधान प्रवृत्ति बहुत थी। वे अपने अध्ययनकाल में एक प्रतिभावान् विद्यार्थी रहे, और यही कारण है कि वे इस क्षेत्र में चरमोत्कर्ष कर गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के कुलपति भी रहे।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ जैसे विद्वान् से आर्यसमाज की दीक्षा लेने के बाद उन्होंने आर्यसमाज के एक प्रचारक के रूप में धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में प्रवेश किया।

मौलाना आजाद की मृत्यु के बाद गुड़गांवा से लोकसभा के चुनाव के लिए वह सर्वप्रथम निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में भारी बहुमत से चुन लिए गए और इस प्रकार उनके राजनीतिक जीवन का आरम्भ हुआ। संसद् में अपने प्रभावकारी और मधुर भाषणों से उन्होंने शीघ्र ही उस समय के प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू का न केवल हृदय जीत लिया बल्कि उनका आदर भी प्राप्त किया।

संसद् में भी शायद ही ऐसा कोई राष्ट्रीय प्रश्न हो, जिस पर उन्होंने अपनी तार्किक, बौद्धिक विचारों की छाप न छोड़ी हो। वे बहुत ही ओजस्वी वक्ता थे, एवं सुनने में आकर्षण एवं सौन्दर्य प्रदान करे, ऐसी उत्कृष्ट भाषा उनकी वाणी से प्रस्फुटित होती थी।

कलम के धनी श्री शास्त्री जी की प्रकाशित रचनाएं जो चर्चित रहीं वे हैं, 'धधकता कश्मीर', 'गो हत्या या राष्ट्र हत्या', 'कश्मीर की वेदी पर', 'मेरे सपनों का भारत' आदि।

परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि आर्य संस्कृति के प्रकाशपुंज, महान् देशभक्त, राष्ट्रभाषा हिन्दी के समर्थक, प्रवासी भारतीयों के प्यारे नेता, आर्यसमाज के उज्ज्वल आर्य रत्न, युवक हृदय सम्राट्, राष्ट्रीय एकता के प्रतीक, व्याख्यान केसरी, प्रभावशाली संसद् सदस्य, श्रद्धेय पं. प्रकाशवीर शास्त्री के सदृश कर्मवीर, धर्मधुरीगण, वेद-सन्देशवाहक, सच्चा लोक-हितैषी, आर्य कुल-दीपक, नेता सदैव इस भारतीय वसुन्धरा पर अवतीर्ण होते रहें।

—मूलचन्द गुप्त

(आर्यसन्देश, 26-11-89)

लाला लाजपतराय

बहुआयाम के धनी लाला लाजपतराय भारतीय राष्ट्रीयवाद के प्रखरतम समर्थक थ। उनको शेरेपंजाब कहा जाता था। वे लाल, बाल, पाल दल के सदस्य थे। जिसे उस समय की राजनीति में गरम दल माना जाता था। इन तीनों ने कांग्रेस के कार्यक्रमों में बड़ा शक्तिशाली आत्मविश्वास पैदा किया था। उनका एक-एक शब्द उतना ही धधकता हुआ होता था, जितने उनके कार्य। वह कभी न थकने वाला व्यक्ति था। जो देश के लिए जिया और देश के लिए मरा। लाला लाजपत राय का कांग्रेस के नरम दल वाले वर्ग से कई बार मतभेद भी होता था। परन्तु वे एक लक्ष्य को लेकर सब मिलकर आगे बढ़ते थे उनकी दृष्टि दूरगामी परिणामों पर रहती थी।

लाला लाजपत राय का जन्म 28 जनवरी 1865 को लुधियाना जिले की जगरांव तहसील में हुआ था। उनके ऊपर हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों संस्कृतियों का प्रभाव था। उनके पिता उर्दू के बहुत बड़े विद्वान् थे और वे मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित थे। उनकी माता कट्टर सिख थी।

अपनी युवा अवस्था में लाला लाजपत राय आर्यसमाज आन्दोलन के प्रति आकर्षित हुए जो उन्नीसवीं बीसवीं सदी का एक महान् समाजसुधारक आन्दोलन था। 17 वर्ष की आयु में दिसम्बर 1882 में वे आर्यसमाज के सदस्य बने। यह उस समय की सामाजिक विडम्बना थी कि लाला लाजपतराय का विवाह भी 12 वर्ष की छोटी आयु में हो गया था। उन्होंने अपनी वकालत 1953 में प्रारम्भ की। हमारे देश का यह सौभाग्य रहा है कि स्वाधीनता आन्दोलन को अध्यापकों, वकीलों, पत्रकारों तथा अन्य क्षेत्रों में कार्यरत बुद्धिजीवियों ने नेतृत्व प्रदान किया है। ऐसे ही लाला लाजपत राय थे, जिन्होंने अपना जीवन वकालत से प्रारम्भ किया था। वे कांग्रेस पार्टी में 1888 में सम्मिलित हुए। उस समय की कांग्रेस स्वाधीनता नहीं बल्कि सुधार की पार्टी थी। उस समय के कांग्रेसी छुट्टी के दिन के देशभक्त थे। यह बात लाला लाजपतराय को पसन्द न आई। उन्होंने इसकी सामाजिक और शैक्षिक गतिविधियों को विस्तार दिया और धीरे-धीरे इसको भारत की स्वाधीनता के साथ जोड़ दिया। लाला लाजपतराय उस गुरु का शिष्य था जो स्वराज्य का पक्षधर था। उसने कांग्रेस के लोगों को कहा, 'हमें भीख नहीं मांगनी है, बल्कि अपने बाहुबल से अपना अधिकार प्राप्त करना है।' और यही मुख्य बात थी, जिसके कारण उसे गरम दल का समर्थक माना गया

1907 में लाला लाजपतराय ने पंजाब में एक बहुत बड़ा व्यापक स्तर पर किसानों का आन्दोलन चलाया, जिसके कारण उन्हें माण्डले जेल में भेजा गया। उसका नारा था। स्वदेशी, स्वराज्य, बहिष्कार और राष्ट्र शिक्षा। सन् 1914 में लाला लाजपतराय छः महीने के लिए कांग्रेस के शिष्टमण्डल के रूप में इंग्लैण्ड में गये। वे 5 वर्ष तक अमेरिका में भी रहे। 1916 में उन्होंने इण्डियन होमरूल लीग की स्थापना की। बाद में यंग इण्डिया मासिक अखबार भी निकाला।

भारत में लौटने पर उन्होंने सितम्बर 1920 में कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता की। और यहां से उर्दू दैनिक वन्देमातरम् और अंग्रेजी साप्ताहिक पीपुल, ये दो अखबार निकाले। उनकी पत्रकारिता में गहन रुचि थी और वे एक सफल और प्रभावपूर्ण तथा प्रवाहपूर्ण लेखन शैली के धनी थे। उसी वर्ष वे अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रधान भी चुने गये। सन् 1922 में जब गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया तो वे निराश भी हुए और क्रुद्ध भी। उन्होंने गांधी जी के अहिंसा में पूर्ण निष्ठा की आलोचना भी की थी।

1925 में वे केन्द्रीय विधान सभा के स्वतन्त्र उम्मीदवार के रूप में सदस्य भी चुने गये और बाद में चलकर वह पण्डित मोतीलाल नेहरू की स्वराज्य पार्टी में सम्मिलित हो गये। परन्तु उनकी पण्डित नेहरू के साथ नहीं निभी।

अन्त में वह दुर्भाग्यपूर्ण दिन आया। जब 30 अक्तूबर 1928 को साईमन कमीशन के विरोध में प्रदर्शन करते हुए उनके सिर और छाती पर एक अंग्रेज अधिकारी ने उन्हें पाशविक ढंग से मारा। उस समय उन्होंने कहा था, 'मेरे ऊपर लगी एक-एक चोट अंग्रेजी शासन के कफन में कील का काम करेगी।' और ऐसा ही हुआ। वह प्रवाहपूर्ण भाषणकर्ता, प्रभावशाली लेखक 17 नवम्बर 1928 को हमें छोड़ गया। परन्तु उनका प्रेरणादायी संदेश हमें आज भी याद है। हमें अपने अधिकारों के लिए यथाशक्ति परिश्रम करना चाहिए। अधिकार मांगे नहीं मिलते, बल्कि अधिकार तो अपने भुजबल से प्राप्त किये जाते हैं।

लाला लाजपत राय भारतीय भाषाओं के प्रबल समर्थक थे। उनके ऊपर आर्यसमाज का विशिष्ट प्रभाव था। लाला हंसराज, पं. गुरुदत्त के साथ उन्होंने आर्यसमाज की ज्योति को प्रज्वलित बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। आर्यसमाज के उस सपूत ने देश के लिए अपने आप को बलिदान कर दिया। एक उल्लेखनीय तथ्य है कि 1968 में उनके जीवन वृत्त पर सरकार ने एक डाकुमेंटरी फिल्म बनाई थी। जिसे प्रतिवर्ष यथासमय दूरदर्शन पर तथा प्रेक्षागृहों में दिखाया जाता है। इस फिल्म के निर्माण में आर्यसमाज दीवान हाल दिल्ली ने भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया था।

—डा. धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 26-11-89)

पं॰ वीरसेन वेदश्रमी

वेदविज्ञानाचार्य पं. वीरसेन वेदश्रमी का जन्म 5 सितम्बर 1908 में देवास में हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन, मथुरा में हुई। उन्होंने गुरुकुल से 'आयुर्वेद शिरोमणि' की उपाधि प्राप्त की। अध्ययन के पश्चात् इन्दौर में रहकर उन्होंने वेदानुसन्धान एवं वेदवेदांग के अध्ययन का कार्य जारी रखा। उन्हें यजुर्वेद एवं सामवेद कण्ठस्थ थे जिसका उन्होंने सहस्राधिक बार पारायण किया। उन्होंने श्री स्वामी गंगेश्वरानन्द जी महाराज के संरक्षण में चारों वेदों का पारायण 108 बार किया।

उन्होंने विश्वकल्याण और विश्व समृद्धि की सर्वाग्रणी सर्वश्रेष्ठ योजना यज्ञ महाविज्ञान आर्य जगत् के सम्मुख प्रस्तुत की और वे आजीवन इसके सफल क्रियान्वयन में संलग्न रहे। अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः (यजु. 23।63) यज्ञ ही समस्त संसार की नाभि-केन्द्र है—उत्पत्ति स्थान है—इसी में लोक लोकान्तर बंधे हैं। इसीलिए यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु (यजु. 23।65) अर्थात् जिस कामना के लिए हम यज्ञ करें, वह कामना हमारी पूर्ण हो—फलीभूत हो—यह वेद ने कहा है। आचार्य वीरसेन जी का विश्वास था कि यज्ञों के द्वारा बुद्धि-वृद्धि, श्री वृद्धि, गूंगों में वाणी की प्राप्ति, विविध रोगों से निवृत्ति-मानसिक रोग, लकवा, वायु रोग, कफरोग, श्वास दमादि तथा हृदय रोगों से निवृत्ति प्राप्त की जा सकती है। इस दिशा में उन्होंने उल्लेखनीय परीक्षण भी किए और इनमें उन्हें अभूतपूर्व सफलता भी मिली।

पं. वीरसेन वेदश्रमी ने सस्वर वेदपाठ प्रशिक्षण भी प्रदान किया। स्वामी सर्वानन्द साधु आश्रम हरदुआगंज, गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन, कन्या गुरुकुल मातृ मन्दिर वाराणसी, आर्यसमाज सागर, आर्यसमाज इन्दौर, आर्यसमाज माटूंगा, आर्यसमाज पूना, आर्य कन्या इण्टर कालेज झांसी, आर्यसमाज राजेन्द्रनगर नई दिल्ली, आर्यसमाज आनन्द गुजरात, आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा, गंगेश्वरधाम बम्बई, आर्यसमाज खण्डवा, माता चन्ननदेवी आर्य नेत्र चिकित्सालय जनकपुरी दिल्ली में उन्होंने सस्वर वेदपाठ का प्रशिक्षण दिया। उन्होंने यज्ञ द्वारा वृष्टि कराने तथा अति-वृष्टि रोकने के लिए भी सफल परीक्षण किए।

उन्होंने वेदादिशास्त्रों पर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिनमें प्रमुख हैं—वैदिक सम्पदा, सन्ध्या योग रहस्य, वैदिक अध्यात्म, वैदिक समाजवाद, वैदिक वृष्टि विज्ञान, यज्ञ-महाविज्ञान आदि। उनका अंग्रेजी भाषा पर भी समान अधिकार था।

उन्हें अनेक संस्थाओं द्वारा समय-समय पर उनकी साहित्य सेवाओं के लिए सम्मानित भी किया गया। उन्हें वैदिक सम्पदा पर गंगाप्रसाद उपाध्याय पुरस्कार 1972 में प्रदान किया गया। श्रद्धानन्द जयन्ती महोत्सव पर गुरुकुल कांगड़ी में 1976 में और महर्षि निर्वाण शताब्दी के अवसर पर 1983 में उन्हें पुरस्कृत एवं सम्मानित किया गया। उन्हें भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् द्वारा 'वृष्टि एवं मौसम विज्ञान' से सम्बन्धित सेमिनारों में ससम्मान आमन्त्रित किया जाता था।

पं. वीरसेन वेदश्रमी ने आर्यसमाज और वैदिक विचारधारा के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। हम उनका सश्रद्ध स्मरण करते हैं।

—डा. धर्मपाल
(आर्यसन्देश, 3-12 89)

जैनमत विचार

बारहवें समुल्लास में जो-जो जैनियों के मत के विषय में लिखा है सो-सो उनके ग्रन्थों के पते पूर्वक लिखा है। इसमें जैनी लोगों को बुरा न मानना चाहिये क्योंकि जो-जो हमने मत विषय में लिखा है वह केवल सत्यासत्य के निर्णयार्थ है न कि विरोध वा हानि करने के अर्थ। इस लेख को जब जैनी, बौद्ध या अन्य लोग देखेंगे तब सबको सत्यासत्य के निर्णय में विचार और लेख करने का समय मिलेगा और बोध भी होगा।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

वैद्य गुरुदत्त

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च'। गीता का यह वाक्य सदैव ऐसे अवसरों पर स्मरण आ ही जाता है। वैद्य गुरुदत्त भी इसके अपवाद न थे। देश-धर्म और जाति के रक्षक, करोड़ों पाठकों के प्रेरणास्रोत, वैदिक-सिद्धान्तों के अनन्य पोषक वैद्य गुरुदत्त का आज हम उनके जन्मोत्सव के अवसर पर स्मरण कर रहे हैं।

मनुष्य की पहचान उसके कर्म से होती है। गुरुदत्त का यह सौभाग्य था कि उन्होंने भारत-भू पर जन्म लिया। साथ ही करोड़ों भारतीयों का भी सौभाग्य था कि वेद की शाश्वत वाणी के गायक, सरस्वती के अमर उपासक वैद्य गुरुदत्त ने उनके बीच आकर उनकी समस्याओं को जाना, परखा और अपनी लेखनी तथा अपने कार्यों से उन सभी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया। उन्होंने मानव-समाज को सुमार्ग की ओर प्रेरित किया। मानवसमाज को सुमार्ग की ओर से ले जाने वाले कभी भी सत्ता के लिए सुखकर नहीं होते-- ईसा, मोहम्मद, महावीर, बुद्ध, गांधी, दयानन्द, विवेकानन्द आदि सभी को सत्ता का कोपभाजन बनना पड़ा। एक प्रसिद्ध पंक्ति है—राजा का हित करने वाले से प्रजा घृणा करती है और प्रजा का हित करने वाले को राजा त्याग देता है। इस प्रकार दोनों का हित करने वाला व्यक्ति कोई हो ही नहीं सकता। यही स्थिति गुरुदत्त की भी रही। पहले वे गोरे अंग्रेजों से जूझते रहे, बाद में, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अपने ही काले अंग्रेजों – शासकों से। उन्होंने सदैव प्रजा का भला चाहा, उन्होंने कभी किसी पद की कामना नहीं की।

गुरुदत्त जी दूसरों के लिए जिए और दूसरों को जीना सिखा गए। इसलिए वे अमर हो गए। वैद्य गुरुदत्त का जीवन संघर्षों से भरा है। अधिकांश लोग उन्हें उपन्यास-कार के रूप में जानते हैं, पर वे तो इससे बहुत ऊपर थे। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। आयुर्वेद, राजनीति, दर्शन और वैदिक वाङ्मय के क्षेत्र में उनका योगदान अप्रतिम है। वे प्रखर राष्ट्रवादी थे। आर्यसमाज के संस्कार और प्रखर देशभक्ति उन्हें गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में खींच लायी। उन्होंने एम० एस-सी की थी। वे गवर्नमेंट कालेज में प्रवक्ता बने थे। उन्होंने उसे छोड़ दिया और नेशनल स्कूल के हैडमास्टर बन गए। कुछ समय तक कांग्रेस में सक्रिय रहकर, उन्होंने आयुर्वेद का अध्ययन किया। 1937 में वे लाहौर छोड़कर दिल्ली आ गए। देशविभाजन के बाद कांग्रेस से मोहभंग हो जाने पर उन्होंने श्यामाप्रसाद मुखर्जी का सहयोग, जनसंघ की स्थापना करने में किया। वे दिल्ली प्रदेश जनसंघ के पहले अध्यक्ष बने।

1962 में डा० मुखर्जी के बलिदान के अवसर पर उन्होंने पं० नेहरू की विदेशनीति और कश्मीर नीति के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किए। श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने उनके भाषण की आलोचना की और तभी से उन्होंने राजनीति से संन्यास ले लिया।

इसके बाद उन्होंने सारा समय साहित्य-सृजन में लगा दिया। उनके उपन्यासों की भाषा रोचक और सरल है, पर उनके विषय गहन सामाजिक और कभी-कभी दार्शनिक विवेचनाओं से सुसंपृक्त हैं। उन्होंने दर्शन एवं विज्ञान, राजनीति उपनिषद्, हिन्दुत्व, प्रजातन्त्र और वर्णाश्रम व्यवस्था आदि विषयों पर अनेक विवेचनात्मक ग्रंथ लिखे। उनके कुछ ग्रंथ-वेदों में क्या है, यजुर्वेद और समाजशास्त्र अभी अप्रकाशित हैं। दो लहरों की टक्कर को आर्यसमाज के क्षेत्र में सदा याद किया जाएगा। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के लिए भी उन्होंने 'वीर हकीकत राय' लिखी थी। यह पुस्तिका वास्तव में कुरान की समीक्षा है।

वह लाड़ला सपूत 8 अप्रैल 1989 को हमें रोता बिलखता छोड़ गया। उसकी स्मृति हमें सम्बल दे कि हम आर्य समाज के लिए इसी तन्मयता से कार्य कर सकें।

—डा० धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 17-12-89)

बौद्ध-जैन मत चर्चा

यह बौद्ध-जैन मत का विषय बिना इनके अन्य मतवालों को अपूर्व लाभ और बोध करने वाला होगा, क्योंकि ये लोग अपने पुस्तकों को किसी अन्य मतवाले को देखने, पढ़ने वा लिखने को भी नहीं देते।

भला यह किन विद्वानों की बात है कि अपने मत के पुस्तक आप ही देखना और दूसरों को न दिखलाना।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

रामप्रसाद बिस्मिल

काकोरी षड्यन्त्र में जिन चार व्यक्तियों को 1927 में फांसी दी गई थी, उनमें रामप्रसाद बिस्मिल भी थे। उनके पूर्वज मूलरूप से ग्वालियर राज्य के रहने वाले थे। उनके परिवार को शाहजहांपुर में जो कष्ट हुए, उनका वर्णन करना बहुत ही त्रासद है। बिस्मिल ने स्वयम् उन क्षणों को सहन करने का प्रयास किया है। राम प्रसाद बिस्मिल का जन्म ज्येष्ठ शुक्ला 11, संवत् 1954 विक्रमी को मुरलीधर के घर में हुआ। मुरलीधर अपने बच्चों पर कड़ी निगरानी रखते थे। एक बार राम प्रसाद कहीं खेलने चले गए, तो उन्हें इतना पीटा गया कि वे कई दिन उठ न सके। बस, यहीं से बगावत के भाव उनके हृदय में प्रदीप्त हो गए। राम प्रसाद ने लिखा है—'इस प्रकार खूब पिटता था, पर उद्दण्डता अवश्य करता था। शायद उस बचपन की मार से ही, यह शरीर बहुत कठोर तथा सहनशील बन गया।'

रामप्रसाद में पढ़ने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। वे पैसे चुराकर किताबें खरीदते। उनमें कुछ कुभावनाएं भी घर कर गई थीं। पर कुछ दिनों बाद जब मंदिर में आना जाना बहुत हुआ तो पुजारी जी के उपदेशों का उनके ऊपर प्रभाव पड़ा और वे बुरी आदतों से छूट गए। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा। बस हवा ही बदल गई। उन्होंने स्वयं लिखा कि उनके जीवन का स्वर्णिम पृष्ठ खुल गया। उनके जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ। रामप्रसाद एक तखत पर कम्बल बिछाकर सोने लगे। रात के समय खाना भी छोड़ दिया। किसी के कहने से नगर भी छोड़ दिया। उबालकर दाल या साग से एक समय भोजन करते। मिर्च खटाई तो छूते ही नहीं थे। व्यायाम भी करने लगे। नित्य स्वाध्याय भी करते। जब सुनते कि कोई साधु महात्मा आए हैं, तो उनका उपदेश अवश्य सुनते।

आर्यसमाज में उनकी श्रद्धा देखकर कुछ लोगों ने उनकी शिकायत उनके पिता से कर दी। पिताजी ने जिद पकड़ी कि या तो आर्यसमाज छोड़ दो या घर छोड़ दो। रामप्रसाद टस से मस नहीं हुए। केवल एक कमीज और धोती पहने घर से निकलने को तैयार हो गए। पिता के पैर छूकर घर से बाहर निकले। जंगल में पेड़ पर बैठकर रात बिताई। भूख लगने पर खेतों से हरे चने तोड़कर खाए। नदी में स्नान किया और जलपान किया। दूसरे दिन वे आर्यसमाज गए और स्वामी अखिलानंद का व्याख्यान सुना। वहां पर एक पेड़ के नीचे खड़े थे। पिता जी कुछ लोगों को लेकर आए और पकड़कर मिशन स्कूल के हैडमास्टर के पास ले गए। हैड मास्टर ने समझाया कि रोज-रोज का पीटना ठीक नहीं है। उस दिन के बाद

मुरलीधर ने कभी रामप्रसाद पर हाथ नहीं उठाया। रामप्रसाद बराबर आर्यसमाज में जाते रहे। उन्होंने साधुओं और विद्वानों की भरसक सेवा की। एक आर्यकुमार सभा बनी जिसकी ओर से शहर में व्याख्यान किए जाने लगे। ये व्याख्यान देशभक्ति और कर्त्तव्यपरायणता के होते थे। पुलिस ने आर्य कुमार सभा वालों को बाहर व्याख्यान देने से मना कर दिया। आर्यसमाज वालों ने आर्यकुमार सभा को सहारा देने की जगह उन पर शासन जमाना चाहा। उन्होंने आर्यसमाज मंदिर में भी ताला लगा दिया, ताकि वे वहां सभा न कर सकें और धमकी दी कि यदि वहां सभा की गई तो उन्हें पुलिस के हवाले कर देंगे। कई महीनों तक आर्यकुमार सभा मैदानों में चलती रही। पर युवकों के जोश पर चल रही थी। एक दिन टूट गई।

इन्हीं दिनों रामप्रसाद का सम्पर्क ऐसे व्यक्तियों से हुआ जो देश को आजाद कराने की सोचते थे। उनके मन में उबाल तो था ही। वे भी इसी रास्ते पर चल पड़े। लोकमान्य तिलक एक बार शाहजहांपुर आए। उनके विचारों तथा व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुए कि उस समय की आजादी प्राप्ति की आंधी में कूद पड़े। रामप्रसाद ने उन दिनों एक किताब लिखी—'अमरीका को स्वाधीनता कैसे मिली।' इस किताब के माध्यम से उन्होंने अपने देशवासियों की रगों के ठण्डे लहू को गर्म किया। आगे इतिहास आता है, उनके फरारी जीवन का। वे इस कष्ट कर जीवन को, एक ऊँचा उद्देश्य लिए निभाते रहे। उन्होंने 'बोलशेविकों की करतूत', 'मन की लहर', 'कैथराइन,' 'स्वदेशी रंग', 'यौगिक साधना' आदि पुस्तकें लिखीं या अनुवाद किए।

काकोरी रेल डकैती में उन्होंने अभूतपूर्व योगदान किया था। उस समय के बाद ब्रिटिश सरकार बहुत सचेत हो गई थी। फिर वे पकड़े गए और 19 दिसम्बर 1927 को उन्हें गोरखपुर जेल में फांसी की सजा दी गई। फांसी घर के दरवाजे पर जाकर उन्होंने कहा था—'मैं ब्रिटिश साम्राज्य का विनाश चाहता हूँ।' उसके बाद तख्ते पर खड़े होकर प्रार्थना के बाद—ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि तथा अन्य मंत्रों का पाठ किया और वे फांसी के फंदे पर झूल गए।

उस रामप्रसाद बिस्मिल का गर्म लहू आज भी अमानुषिकता, पैशाचिकता तथा अमानवीयता के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा देता है।

—मूलचन्द गुप्त

(आर्यसन्देश, 17-12-89)

स्वामी आनन्द भिक्षु सरस्वती

स्वामी आनन्द भिक्षु जी का जन्म उत्तर प्रदेश के फतेहपुर हसवा नामक नगर के एक कायस्थ परिवार में सन् 1878 में हुआ था। आपका जन्म-नाम बलदेव प्रसाद श्रीवास्तव था। यद्यपि आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू तथा फारसी में हुई थी, किन्तु अपने स्वाध्याय के बल पर आपने हिन्दी का भी अच्छा ज्ञान अर्जित कर लिया था। पिता के देहावसान के उपरान्त आप 'रेलवे' की सर्विस में चले गए थे और लगभग 10-12 वर्ष आप उसमें रहे थे।

सन् 1918 में आपने रेलवे की नौकरी को तिलांजलि देकर अपनी पत्नी श्रीमती कुन्ती देवी के साथ वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लिया और लोक-सेवा में लग गए। अपने भतीजे श्री हरिश्चन्द्र को विधिवत् गोद लेकर उसकी शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल वृन्दावन में कराई थी। उन दिनों गुरुकुल वृन्दावन के मुख्याधिष्ठाता मुन्शीराम नारायण प्रसाद (बाद में महात्मा नारायण स्वामी) थे। उनके अनुरोध पर आप सपत्नीक गुरुकुल वृन्दावन में चले गए और वहाँ पर आपने अवैतनिक रूप में सहायक मुख्याधिष्ठाता का कार्य भी किया था।

1920 में जब मुन्शी नारायण प्रसाद संन्यास की दीक्षा लेकर 'महात्मा नारायण स्वामी' हो गए तब आपने भी संन्यास ग्रहण कर लिया और 'आनन्द भिक्षु' के नाम से अभिहित किए जाने लगे। गुरुकुल वृन्दावन को छोड़कर आप वहाँ की प्रख्यात संस्था 'प्रेम महाविद्यालय' में अवैतनिक सचिव हो गए। उल्लेखनीय है कि 'प्रेम महाविद्यालय' की प्रस्थापना प्रख्यात क्रान्तिकारी नेता राजा महेन्द्रप्रताप ने की थी।

जब महात्मा नारायण स्वामी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के प्रधान निर्वाचित हुए तब आप उनके अनुरोध पर दिल्ली आ गए और सभा के 'कार्यालय सचिव' के रूप में कार्य करने लगे। आप कई वर्षों तक सभा के मंत्री भी रहे। संस्था के मंत्री के रूप में आपने सभा के मासिक पत्र 'सार्वदेशिक' का सम्पादन भी कई वर्ष तक सफलतापूर्वक किया था। आपकी 'हमारा प्राचीन गौरव' 'भावना' तथा 'महकते फूल' नामक रचनाओं के कारण आपका हिन्दी साहित्य में भी अच्छा स्थान बन गया था। आपकी रचनाएं उन दिनों 'सार्वदेशिक' तथा 'प्रेम' के अतिरिक्त 'महारथी' तथा 'चाँद' आदि कई प्रतिष्ठित पत्रों में ससम्मान प्रकाशित हुआ करती थीं।

सार्वदेशिक सभा के अतिरिक्त आपका 'अखिल भारतीय श्रद्धानन्द दलितोद्धार सभा', 'संन्यासी मण्डल', 'भारती मातृ-मन्दिर', 'अखिल भारतीय गोरक्षिणी समिति', 'आर्यवीर दल', 'भारतीय ग्रन्थमाला' तथा 'कुन्ती हिन्दी मन्दिर' आदि अनेक सार्वजनिक संस्थाओं से गहरा सम्बन्ध रहा।

आपका निधन सन् 1936 में भरतपुर में हुआ था।

—मूलचन्द गुप्त

(आर्यसन्देश, 17-12-89)

गुणों का ग्रहण दोषों का त्याग

जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बाईबल, और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिये प्रयत्न करता हूं, सबको करना योग्य है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

श्री प्रकाशचन्द कविरत्न

आपका जन्म सन् 1903 में अजमेर (राजस्थान) में हुआ था। आपके पूर्वज अलीगढ़ के निवासी थे, किन्तु आपके पिता जी अजमेर आ गए थे। आपके पिता पण्डित बिहारी लाल जी कट्टर सनातनधर्मी और पौराणिक थे। आर्यसमाज के प्रख्यात उपदेशक पण्डित रामसहाय (बाद में स्वामी ओम्‌भक्त) की प्रेरणा से आपने आर्य समाज में प्रवेश किया था और यावज्जीवन आपने अपनी लेखनी तथा मधुर वाणी से वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार का जो कार्य किया वह सर्वविदित है।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अजमेर के डी०ए०वी० हाई स्कूल में हुई थी। जब देश में 'जलियांवाला बाग' का नृशंस हत्याकांड हुआ था तब आप नौकरी से त्यागपत्र देकर राष्ट्रीय-संग्राम में कूद पड़े।

उन्हीं दिनों जब आपने शुक्ल तीर्थ (गुजरात के मेले में भोले-भाले अनेक हिन्दू ग्रामीणों को ईसाई बनाए जाने का दृश्य देखा तो आपके मन में बड़ी वेदना हुई। फलस्वरूप आपने आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं से मिलकर उन हिन्दुओं को धर्म-परिवर्तित होने से बचाया।

इसी प्रकार जब मालाबार में मोपला मुसलमानों के द्वारा हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया जा रहा था और आर्यसमाज ने उन्हें मुसलमान होने से बचाया था, उस समय भी आप अग्रिम पंक्ति में थे।

वैदिक संस्कृति की रक्षा भावना के वशीभूत होकर आप आर्यसमाज द्वारा संचालित समाज सुधार के कार्यों में रुचि लेने लगे। आपको आर्यसमाज के जिन अनेक नेताओं और कार्यकर्ताओं से प्रेरणा प्राप्त हुई उनमें स्वामी श्रद्धानन्द, पंडित शंकर देव विद्यालंकार मुख्य हैं।

अजमेर वापिस लौटकर आपने पण्डित रामसहाय आर्योपदेशक की प्रेरणा से आर्यसमाज में प्रचारक का कार्य प्रारम्भ कर दिया। आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध नेता देश-भक्त कुंवर चांदकरण शारदा और पण्डित जियालाल के साथ जब आप 'दयानन्द जन्म शताब्दी' के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए मथुरा जाने लगे, तब आपने जो एक गीत लिखा था, वह इतना प्रसिद्ध हुआ कि उसने आपको लोकप्रियता के उत्तुंग शिखर पर प्रतिष्ठित कर दिया। उस गीत की प्रारम्भिक पंक्तियां इस प्रकार हैं—

वेदों का डंका आलम में, बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने।
हर जगह 'ओइम्' का झण्डा, फिर, फहरा दिया ऋषि दयानन्द ने॥

मथुरा के उस उत्सव में यह गीत इतना प्रचारित हुआ कि उसके कारण आपकी

लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई। इसी उत्सव के अवसर पर आपने हिन्दी के प्रख्यात कवि श्री नाथूराम 'शंकर' शर्मा के दर्शन किए थे। आपने उसी समय उनको अपना काव्य-गुरू बना लिया था। और आप एक कुशल कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो गए।

आपने अपनी कविताओं और भजनों के द्वारा जहां आर्यसमाज के सिद्धान्तों को प्रचारित करने का प्रशंसनीय कार्य किया वहीं उसके माध्यम से हिन्दी साहित्य की सेवा की।

आर्यसमाज के सुधारवादी आन्दोलन में भाग लेने के अतिरिक्त आप राष्ट्र के स्वाधीनता-संग्राम में सहयोग देने में भी पीछे नहीं रहे। सन् 1930 के राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेकर आपने जेल में विषम यातनाएँ भोगीं।

लगभग तीन दशकों तक अथक भाव से अपनी काव्य-रचनाओं के द्वारा आर्यसमाज की जो सेवा की, वह सर्वथा अभिनन्दनीय है। अन्तिम दिनों में आप गठिया रोग से आक्रान्त होकर चलने-फिरने में भी अशक्त हो गए थे, परन्तु आपकी लेखनी और वाणी चलती रही।

आपकी काव्य-कृतियों में 'प्रकाश भजनावली' (5 भाग), 'प्रकाश भजन सत्संग', 'प्रकाश गीत' (4 भाग), 'प्रकाश तरंगिणी' (साहित्यिक कविताएं), 'कहावत कविता-वली,' 'गो-गीत प्रकाश', 'वाल हकीकत' तथा 'दयानन्द प्रकाश' (महाकाव्य) आदि उल्लेखनीय हैं।

आपकी राष्ट्र, साहित्य एवं आर्यसमाज के प्रति की गई उल्लेखनीय सेवाओं के लिए आपको 23 अक्तूबर सन् 1971 को एक विशाल 'अभिनन्दन ग्रंथ' भेंट किया गया था।

आपका निधन 11 दिसम्बर सन् 1977 को हुआ। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि आर्य संस्कृति के प्रकाश पुञ्ज श्रद्धेय प्रकाशचन्द कविरत्न सदृश आर्यकुल दीपक सदैव भारतीय वसुन्धरा पर अवतीर्ण होते रहें।

--मूलचन्द गुप्त

(आर्यसन्देश, 17-12-89)

ताराचन्द गाजरा

श्री गाजरा का जन्म सिन्ध प्रदेश के शिकारपुर नामक नगर में 12 दिसम्बर सन् 1886 को हुआ था। आपके पिता श्री डेऊमल प्रख्यात समाजसेवी थे। इसी कारण श्री गाजरा के जीवन में भी समाजसेवा की भावनाएँ उठीं।

आप आर्यसमाज के अच्छे कार्यकर्त्ता थे और आपने आर्यसमाज के मंच से सिन्धी जनता की अच्छी सेवा की थी। आपने सिन्ध में दलितोद्धार, वेद प्रचार और आर्य वीर दल के संगठन में उल्लेखनीय योगदान दिया था। 'हैदराबाद आर्य सत्याग्रह' में भी आपने अत्यन्त उत्साह से भाग लिया था।

आपने कुछ दिन तक स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा संस्थापित 'गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय' में अध्यापन का कार्य भी किया। जब सन् 1946 में सिन्ध सरकार ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के सिन्धी भाषा के अनुवाद पर प्रतिबन्ध लगाया था तब आपने उसके विरुद्ध प्राणप्रण से आन्दोलन किया था। आप आर्य प्रतिनिधि सभा सिन्ध के प्रमुख पदाधिकारियों में से थे।

सिन्ध में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की जड़ जमाने में आपने जहां आर्य समाज के माध्यम से एक सुपुष्ट भूमिका का कार्य किया, वहाँ सिन्धी पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी की महत्ता के सम्बन्ध में अनेक लेख लिखे थे।

आपका निधन 1970 में हुआ।

—मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 17-12-89)

श्री गोकुलचन्द दीक्षित

श्री दीक्षित जी का जन्म उत्तर प्रदेश के इटावा जनपद के लखना (भर्थना) नामक स्थान में 40 दिसम्बर सन् 1887 को हुआ था। आपके पिता श्री चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित स्टेशन मास्टर थे। आजीविका के निमित्त आप 'सार्वजनिक निर्माण विभाग' में 'ट्रेसर' हो गए। ट्रेसर के कार्य में आपकी रुचि बिल्कुल नहीं थीं। धीरे-धीरे आपने रियासत की ओर से प्रकाशित होने वाले 'भरतपुर गजट' नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादन का कार्य अपने ऊपर ले लिया और उसमें रहते हुए अपनी लेखनी से उसे बहुत लोकप्रिय बनाया। बाद में यह पत्र 'भारत वीर' नाम से प्रकाशित होने लगा था और अनेक वर्ष तक प्रकाशित होता रहा।

राज्य की सेवा में रहते हुए भी आपने अपना स्वाध्याय जारी रखा और राष्ट्रीय आन्दोलन में भी आप सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। इस संदर्भ में आपके घर की कई बार तलाशियाँ भी ली गईं और पुलिस की ज्यादतियों के कारण आपके व्यक्तिगत पुस्तकालय की लगभग 10 हजार पुस्तकें भी नष्ट हो गईं। अन्त में आप को राज्य सेवा से भी हाथ धोना पड़ा।

आप विचारों के कट्टर आर्यसमाजी, देशभक्त और सुधारक प्रवृत्ति के ऐसे साहित्यकार थे कि आपने अपनी लेखनी को बहुविध साहित्य के निर्माण में लगाया। संस्कृत तथा हिन्दी के उद्भट विद्वान होने के साथ-साथ आप उर्दू तथा फारसी के भी अच्छे ज्ञाता थे। ऐतिहासिक शोध तथा सांस्कृतिक उन्नयन की दिशा में आपने अनेक ऐसी कृतियाँ हिन्दी को प्रदान की हैं, जिनसे आपके अगाध पाण्डित्य का परिचय मिलता है। प्राचीन वैदिक साहित्य और दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज करने की दिशा में आपकी बहुत रुचि थी। आपने जहाँ अनेक मौलिक काव्यों की रचना की थी वहाँ संस्कृत के अनेक ग्रंथों की टीकाएं भी प्रस्तुत की थीं। आपके द्वारा लिखित ग्रंथों में जहां इतिहास, जीवनी से सम्बन्धित अनेक मौलिक रचनाएं हैं, वहां महाकवि देव द्वारा प्रणीत 'श्रृंगार विलासिनी' नामक प्रख्यात ग्रंथ की खोज करने का श्रेय भी दीक्षित जी को ही दिया जाता है। आप आर्य जगत् के कुशल तार्किक और प्रखर वक्ता थे।

आपने अनेक वर्ष तक आगरा में रहकर जहां उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के साप्ताहिक मुखपत्र 'आर्यमित्र' के सम्पादन में सक्रिय सहयोग दिया था, वहां सभा के 'भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस' की व्यवस्था करने में भी अपना हाथ बंटाया था। जब सभा के निर्णयानुसार पत्र और प्रेस स्थायी रूप से अपने भवन में लखनऊ

चले गए, तब आप वहां न जाकर भरतपुर में ही रह कर साहित्य-सेवा करने लगे थे। आपके द्वारा रचित और अनुदित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—'दर्शनानन्द ग्रंथ-संग्रह', 'षड्दर्शन सम्पत्ति', 'वैशेषिक दर्शन' (टीका) 'मीमांसा दर्शन' (टीका), 'धर्मवीर पं० लेखराम' (जीवनी), 'भरत संजीवनी', 'भगवती शिक्षा समुच्चय', 'विदुर-नीति' तथा 'बिहारी सतसई की टीका' (चित्रकाव्य), 'व्रजेन्द्र वंश भास्कर' (भरतपुर राज्य का इतिहास), 'बयाना का इतिहास', 'बयाना किले की भीम लाट' (शोध निबन्ध), 'श्रृंगारविलासिनी' (टीका), 'चार यात्री' (जीवनी) आदि।

आप का देहावसान अक्तूबर सन् 1944 में भरतपुर में हुआ था।

—आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'
(आर्यसन्देश, 31-12-89)

सत्य की विजय।

सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है। इस दृढ़ निश्चय के अवलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थ प्रकाश करने से नहीं हटते।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

लाला चतुरसेन गुप्त

आर्यजगत् की शिरोमणि संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के आजीवन सदस्य स्वर्गीय लाला चतुरसेन गुप्त का जन्म उत्तर प्रदेश के एक छोटे से कस्बे शामली (मुजफ्फरनगर) में सन् 1906 में हुआ था। यद्यपि आप का शिक्षा-काल केवल दो वर्षों तक ही सीमित रहा, और आपकी युवावस्था का प्रारम्भ भी पौराणिक वातावरण से परिपूर्ण था, तथापि आर्यसमाज के सम्पर्क में आते ही, आपने आर्य साहित्य एवं भारतीय संस्कृति का गहन अध्ययन किया और निरन्तर स्वाध्याय करते रहे। जिस का परिणाम यह हुआ कि आपकी लेखनी से छोटी-बड़ी लगभग सौ पुस्तकें लिखी गईं। अनेक पुस्तकें ब्रिटिश-काल में जब्त भी हुईं। आप की अनेक पुस्तकें जैसे, 'हड़ताल', 'स्वर्ग में हड़ताल', 'धर्म के नाम पर', 'देशी राज्यों में व्यभिचार', 'नरक की रिपोर्ट', 'पूंजीपतियों की कहानी', 'रंगीले लाला', 'कश्मीर कैसे मुसलमान बना', 'पुरुषार्थ प्रकाश', 'स्वर्ग में महात्मा गांधी की प्रेस कांफ्रेंस', 'सुनो कामराज जी', 'राष्ट्रपति जी के नाम 11 पत्र, 'साम्प्रदायिकता का नंगा नाच', 'नेहरू जी की आर्य विचारधारा', 'भारत मां की अश्रुधारा', 'ईसाइयों के खूनी कारनामे', 'विदेशी समाजवाद के मुंह पर चपत', 'गांधी जी की गाय', 'पागलखाने से', 'मैं बुद्धू बन गया', 'भाग्य की बातें', 'मैं हंसूं या रोऊँ', 'परलोक में 26 जनवरी' आदि बहुचर्चित रहीं। आपकी मृत्यु से दो माह पूर्व लिखी पुस्तक 'महान् आर्य हिन्दु जाति मृत्यु के मार्ग पर' इतनी क्रांतिकारी सिद्ध हुई कि दो मास में ही उसके दो संस्करण निकालने पड़े।

गुप्त जी के जीवन का मुख्य ध्येय आर्य साहित्य का प्रचार और प्रसार ही कह दिया जाय तो अत्युक्ति न होगी। आपने अपने जीवन में दुर्लभ आय साहित्य को ढूंढ़-ढूंढ़ कर प्रकाशित किया, और लागत मात्र में देते रहे। महाभारत के 16 खण्डों को छाप कर आपने राजस्थान की एक-एक रियासत में स्वयं जा-जाकर प्रचारित किया। 'कौटिल्य अर्थशास्त्र', 'शुक्रनीति', 'नारद-नीति', 'कणिकनीति', 'दण्डनीति', 'विदुरनीति', 'भोजप्रबन्ध', 'डा० बर्नियर की भारत यात्रा' के अनेकों सस्ते संस्करण निकाले।

आर्य साहित्य के प्रायः अनेक लुप्त ग्रन्थों, जैसे 'दयानन्द दिग्विजयम्' और 'स्वधर्म रक्षा' को प्रकाशित कर आर्यसमाज की महती सेवा की। अनेकों संस्करणों द्वारा आपने सत्यार्थप्रकाश की एक लाख से भी अधिक प्रतियां और दैनिक यज्ञप्रकाश की तो एक लाख से भी अधिक प्रतियां प्रकाशित कर दी थीं। 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित' व 'व्यवहारभानु' की भी एक-एक लाख प्रतियां विभिन्न माध्यमों से प्रकाशित कराईं।

आपने अनेकों प्रकाशनों—जैसे महाभारत प्रकाशन, राष्ट्रनिधि प्रकाशन, सत्यार्थ प्रकाश धमार्थ ट्रस्ट प्रकाशन, धर्म प्रकाशन, भारतीय राजनीति प्रकाशन, सार्वदेशिक प्रकाशन, सार्वदेशिक साप्ताहिक, आर्यव्यवहार प्रकाशन इत्यादि से किसी न किसी रूप में संबंधित रह कर सैकड़ों पुस्तकों के सस्ते संस्करण निकलवाए। 'सार्वदेशिक' साप्ताहिक के 'विद्यार्थी जीवन विशेषांक' को एक ही बार में एक लाख छपवाकर, आर्यसाहित्य के इतिहास में एक स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ दिया।

स्वराज्य रक्षक-दल, भारतीय चाणक्य परिषद्, भारतीय त्यागवादी दल के माध्यम से आपने अनेक लेखकों, विद्वानों, राजनीतिज्ञों की ऐतिहासिक भूलों को उजागर करके उन्हें शुद्ध कराया।

अनेकों दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्रों के माध्यम से भी आपने आर्य-साहित्य की जहां श्रीवृद्धि की, वहाँ आर्य (हिन्दू) जाति को समय-समय पर चेताया भी। 'केसरी' साप्ताहिक में उनके 'गुरु जी का चिट्ठा', 'आर्य ज्योति' में 'मैं समाजी कैसे बना' स्तम्भ बहुत समय तक चर्चा के विषय बने रहे। 'सार्वदेशिक' साप्ताहिक में तो आप प्रायः कुछ न कुछ लिखते ही रहते थे।

आपका देहावसान 23 दिसम्बर सन् 1973 को नई दिल्ली के 'आयुर्विज्ञान संस्थान, में हुआ।

—आचार्य क्षेमचन्द सुमन
(आर्यसन्देश, 31-12-89)

यथातथ्य का प्रकाश।

यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूं वैसा ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ भी वर्तता हूं। जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूं वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

पण्डित देवप्रकाश अमृतसरी

आपका जन्म पंजाब प्रदेश के गुरुदासपुर जिले के धर्मकोट बग्गा नामक ग्राम में सन् 1889 में हुआ था। सन् 1912 में आपका आर्यसमाज के सुधारवादी आन्दोलन से सम्पर्क हुआ था और तब से ही आप उससे सक्रिय रूप से सम्बद्ध हो गए थे। अपनी छात्रावस्था से ही आपकी रुचि इस्लाम धर्म के सिद्धांतों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करने की ओर थी। आपने स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती द्वारा लिखित ट्रैक्टों को पढ़कर वैदिक धर्म की उपादेयता और इस्लाम धर्म के खोखलेपन का अच्छा परिचय प्राप्त कर लिया था। अपने परिवार के भरणपोषण के लिए आप जब अमृतसर के लाला मुन्शीराम सर्राफ की दुकान पर आकर आभूषण बनाने का कार्य सीख रहे थे, उन्हीं दिनों से आपका वास्तविक कार्मिक जीवन प्रारम्भ हुआ था। यहाँ रहते हुए आपने लोहागढ़ में 'आर्य युवक समाज' की स्थापना करके अपना समाज सुधार का कार्य प्रारम्भ कर दिया था।

आपकी यह सुधारवादी प्रवृत्ति तब और भी अधिक बढ़ी जब आपने सन् 1923 में स्वामी श्रद्धानन्द और 'महात्मा हंसराज जी आदि पंजाब के शीर्षस्थ नेताओं की प्रेरणा पर अखिल भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा' आगरा के कार्यों में रुचि लेना प्रारम्भ किया और आपने उसके प्रधान मन्त्री का कार्य-भार संभाला था। आपने अपने स्वाध्याय के बल पर 'मुस्लिम धर्म' के सभी सिद्धान्तों का इतनी गम्भीरता से पारायण कर लिया था कि आप उसमें पूर्णतः पारंगत हो गए थे। इस सभा के माध्यम से आपने हजारों राजपूत मुसलमानों को पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित किया, जो कभी बलात् मुसलमान बना लिए गएं थे। मालाबार के मोपला काण्ड के समय भी आपने वहां की जनता की उल्लेखनीय सेवा की थी।

आपने मध्य प्रदेश के रतलाम के समीपवर्ती पिछड़े हुए क्षेत्रों में रहकर आदिवासियों के सुधार तथा उद्धार का जो कार्य किया था वह भी आपकी कर्मठता का ज्वलन्त साक्षी है। आपने वहां के आदिवासियों के सुधार के लिए पाठशालाओं, औषधालयों और छात्रावासों की स्थापना करके वहां के निवासियों को ईसाई तथा मुसलमान बनने से बचाने का जो प्रशंसनीय कार्य किया था उससे आपकी कर्मठता का परिचय मिलता है। आपकी यह दृढ़ मान्यता थी कि जब तक हिन्दू युवक अरबी तथा फारसी का विधिवत् अध्ययन करके 'मुस्लिम धर्म' के ग्रंथ 'कुरान का बारीकी से स्वाध्याय नहीं करेंगे तब तक वे मुस्लिम धर्म की कमियों को जनता के समक्ष उजागर न कर सकेंगे। फलस्वरूप आपने अमृतसर के पास 'गण्डासिंह वाला' नामक स्थान में

अरबी और फारसी का अध्ययन कराने की दृष्टि से एक विद्यालय की स्थापना की थी। जब रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से लाहौर के पास रावी तट पर 'शाहदरा' में पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ने आर्य पद्धति पर संस्कृत वाङ्मय का सक्रिय और सर्वांगीण ज्ञान कराने की दृष्टि से एक विद्यालय की स्थापना की थी। तब आपने उस कार्य में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान किया था। आप जहां अच्छे प्रचारक, कुशल संगठन और अरबी तथा फारसी के गम्भीर विद्वान थे वहां आपने हिन्दी में ऐसी अनेक पुस्तकों की रचना की थी जिनके स्वध्याय से हमारे देश की नई पीढ़ी का मार्ग-प्रदर्शन हो सकता है। आपके द्वारा लिखित ग्रंथों में 'कुरआन परिचय', 'ख्वाजा हसन निजामी का वास्तविक रूप', आस्तिक विचार', 'इंजीलों में परस्पर विरोधी कल्पनाएं अर्थात ईसाई मत का वास्तविक स्वरूप,' 'घोर आक्रमण', 'यथार्थ दर्शन', 'बाहाई मत समीक्षा' और 'आर्यसमाज के विशिष्ट आर्यजनों का जीवन परिचय' आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। आपकी समाज-सेवा की 'हीरक जयन्ती' के अवसर पर 29 अक्तूबर, सन् 1972 को अमृतसर की आर्यसमाज लोहागढ़ की ओर से महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती के करकमलों द्वारा आपको एक अभिनन्दनग्रंथ भेंट किया गया था।

आपका निधन 29 दिसम्बर सन् 1980 को दयानन्द मठ दीनानगर (पंजाब) में हुआ था।

—आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'
(आर्यसन्देश, 31-12-89)

परमेश्वर कल्याण करे।

जो परमात्मा महापराक्रमयुक्त, सबका सुहृत् अविरोधी है वह सुखकारक, वह सर्वोत्तम, वह सुखस्वरूप, वह न्यायाधीश, वह सुख प्रचारक, वह जो सकल ऐश्वर्यवान्, वह सकल ऐश्वर्यदायक, वह सबका अधिष्ठाता, विद्याप्रद और जो सब में व्यापक परमेश्वर है, वह हमारा कल्याण कारक हो।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

श्री चन्द्रगुप्त वेदालंकार

श्री चन्द्रगुप्त वेदालंकार का जन्म सन् 1915 में पश्चिमी पंजाब के एक क्षत्रिय परिवार में गोविन्दगढ़ नामक उस प्रसिद्ध पावन स्थान पर हुआ था, जिसका सम्बन्ध गुरु गोविन्दसिंह जी के संघर्षमय जीवन के घटना-क्रम से है। इसी कारण वह स्थान 'गोविन्दगढ़, नाम से प्रसिद्ध है।

वेदालंकार जी के पिता श्री लक्ष्मण दास आर्यसमाजी विचारों के थे एवं रेलवे स्टेशन-मास्टर के पद पर कार्य करते थे। यद्यपि बालक चन्द्रगुप्त आरम्भ से ही अंग्रेजी माध्यम के स्कूल का मेधावी छात्र था, किन्तु विचित्र बात यह है कि आपने हिन्दी-संस्कृत के माध्यम से विद्या ग्रहण करने का आग्रह किया। फलतः आपको आर्य गुरुकुल मुलतान में प्रविष्ट करा दिया गया। इसी क्रम में उच्च शिक्षा के लिए आप गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार में गए और 1937 में स्नातक होकर 'वेदालंकार' की उपाधि प्राप्त की। अपनी शैक्षणिक प्रतिभा के साथ इस विद्यार्थी-काल में ही लेखनी और वक्तृत्व-कला के कई चमत्कार आपने दिखाए एवं अनेकों विजयोपहार भी प्राप्त किए। बाद में वहां ही प्राध्यापक के पद पर आपकी नियुक्ति हो गई।

इसी काल में अर्थात 1939 में मात्र 25 वर्ष की अवस्था में ही एक महान शोध ग्रंथ 'बृहत्तर भारत' की रचना करके ऐतिहासिक शोध के क्षेत्र में सबको आश्चर्यचकित कर दिया। हिन्दी में तब इस प्रकार का वह पहला ग्रंथ था। अन्य भी जो कई मार्मिक पुस्तकें आपकी लेखनी से लिखी जाकर जनता में प्रसिद्ध हुई, उनमें आपके राजनैतिक गुरू प्रसिद्ध क्रान्तिकारी 'वीर सावरकर जी के रोमांचकारी जीवन की गाथा' एवं 'अन्तर्ज्वाला' उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आपके अनेकों निबन्ध उच्चकोटि की पत्र-पत्रिकाओं में छपे हैं। 'बृहत्तर भारत' ग्रंथ के प्रकाशन के तुरन्त बाद ही वेदालंकार जी को पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर में 1939 के अन्त में प्राचीन ग्रंथों एवं इतिहास की अनुसंधान समिति का सदस्य नियुक्त किया गया। इस युवावस्था यानी 26 वर्ष में यह नियुक्ति एक अद्वितीय सम्मान की बात थी। इसके बाद 1940 में आपने वीर सावरकर, भाई परमानन्द तथा डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के साथ राजनीति में भाग लेना आरम्भ कर दिया और इस बीच दो बार जेल-यात्रा भी कर आए। दो-तीन वर्ष में ही अपने आकर्षक व्यक्तित्व, ओजस्वी भाषण-शैली एवं गम्भीर विचार शक्ति के कारण आप हिन्दू आन्दोलन की एक प्रसिद्ध विभूति माने जाने लगे थे।

1941 में वेदालंकार जी का विवाह बिहार शरीफ जिला पटना के प्रसिद्ध आर्य नेता श्री महेश बाबू की सुपुत्री शारदा देवी से सम्पन्न हुआ था, जिनसे दो सन्तानें – एक पुत्री पूर्णिमा एवं पुत्र प्रदीप हैं। शारदा जी बिहार के शिक्षा-क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं और फरवरी 1980 में आपने भागलपुर के सुन्दरबती महिला महाविद्यालय की प्राचार्या के पद से अवकाश ग्रहण किया है।

आपका निधन सन 1945 में केवल 31 वर्ष की आयु में ही हो गया था।

—आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'
(आर्यसन्देश, 31-12-89)

उपासना का अर्थ।

उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टाङ्ग योग से परमात्मा के समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी रूप से प्रत्यक्ष करने के लिए जो काम करना होता है, वह सब करना चाहिए।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

श्री ऋभुदेव शर्मा

श्री शर्मा जी का जन्म 16 दिसम्बर सन् 1917 को उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के नवपुरा गाँव में हुआ था। आपके पिता श्री नयपाल शर्मा बड़ी ही धार्मिक प्रवत्ति के सत्पुरुष थे और साधु-संन्यासियों की सेवा करना उनका प्रिय कर्तव्य था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा नोनौदा ग्राम के प्राथमिक विद्यालय में हुई। वहाँ पर आपके एक अध्यापक श्री बाबूलाल जी कवि थे। उनकी प्रेरणा से आपको कविता करने की प्रेरणा मिली थी। बलिया जिले के रसड़ा नामक स्थान के विद्यालय से सातवीं की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित हो गए और फिर उसके बाद पंजाब में स्वामी वेदानन्द जी के पास जाकर संस्कृत तथा वैदिक धर्म से सम्बन्धित अनेक ग्रंथों का अध्ययन किया। जिन दिनों आप स्वामी वेदानन्द जी के पास 'गुरुदत्त भवन लाहौर' में पढ़ते थे उन दिनों आप गैरिक वसनों में रहते थे और आपका नाम 'स्वामी आत्मानन्द' था।

लाहौर के उपरान्त आप सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के पास औंध (सतारा) पहुँच गए। वहाँ पर भी आपने अपना स्वाध्याय जारी रखा। फिर आप निजाम राज्य के नेता श्री मनोहरलाल जी की प्रेरणा से 'श्यामार्य गुरुकुल एडसी' के आचार्य बनकर हैदराबाद (दक्षिण) चले गए और फिर सारा जीवन उन्होंने वहाँ ही खपा दिया। आपने हैदराबाद के 'केशव स्मारक आर्य उच्च विद्यालय' में हिन्दी-शिक्षक का भी कार्य किया था। अध्यापन-कार्य करने के साथ-साथ आप लेखन तथा सम्पादन की शिक्षा में भी अग्रसर हुए और वहाँ से प्रकाशित होने वाले 'आर्यभानु' पत्र के सह सम्पादक भी रहे। कुछ दिन तक आपने 'शिव' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था। आप एक सुकवि तथा सुलेखक भी थे। 'शिव' साप्ताहिक में धारावाहिक रूप में प्रकाशित आपकी 'ईशोपनिषद् की व्याख्या' बड़ी ही प्रभावकारी रही थी।

हैदराबाद में हिन्दी-प्रचार का कार्य करने में भी आप अग्रणी रहे थे। आप 'हैदराबाद संस्कृत प्रचार समिति' और 'हिन्दी प्रचार सभा' के भी सक्रिय सदस्य थे। आपकी प्रकाशित रचनाओं में 'ऋग्वेद भाष्य' के अतिरिक्त 'महर्षि दयानन्द गान' और 'आर्य भजन संग्रह' प्रमुख हैं।

आपका निधन 17 जनवरी सन् 1970 को हैदराबाद में हुआ।

—आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'

(आर्यसन्देश, 14-1-90)

पण्डित जयदेव शर्मा विद्यालंकार मीमांसातीर्थ

राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रथम बार चारों वेदों का सम्पूर्ण भाष्य लिखने वाले पं० जयदेव शर्मा का जन्म 1892 ई० में अम्बाला जिले के एक ग्राम में हुआ था। उनका अध्ययन गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में हुआ, जहां आचार्य प्रवर स्वामी श्रद्धानन्द जी के चरणों में बैठकर उन्होंने विद्या ग्रहण की। विद्यालंकार की उपाधि ग्रहण करने के अनन्तर पं० जयदेव शर्मा ने जोबनेर, गुरुकुल कांगड़ी तथा गुरुकुल मुलतान में अध्यापन कार्य किया। कुछ समय तक वे ज्ञानमण्डल काशी तथा कलकत्ता में भी रहे। स्वामी श्रद्धानन्द की प्रेरणा और आदेश से शर्मा जी ने मीमांसा शास्त्र का विशेष अध्ययन कलकत्ते रहकर किया तथा वहां से मीमांसातीर्थ की उपाधि ग्रहण की।

आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर के संस्थापक एवं संचालक श्री मथुरा प्रसाद शिवहरे की प्रेरणा से शर्मा जी ने चारों वेदों का हिन्दी भाषा में भाष्य लिखने का संकल्प किया। मई 1925 में यह कार्य प्रारम्भ हुआ और 11 वर्ष के निरन्तर परिश्रम के पश्चात् 1936 में चतुर्वेद भाष्य समाप्त हुआ। चारों वेदों पर लिखा गया यह हिन्दी भाष्य न केवल हिन्दी में अपितु किसी भी भारतीय भाषा में लिखा गया 'प्रथम सम्पूर्ण भाष्य है।' भाष्यकार ने स्वामी दयानन्द की वेदार्थ की प्रक्रिया का ही अनुसरण किया है। भाष्यारम्भ में विद्वान् भाष्यकार ने महत्त्वपूर्ण भूमिकायें लिख कर चारों वेद संहिताओं का सविस्तार परिचय दिया है। अब तक इन भाष्यों के अनेक संस्करण हो चुके हैं। 1949 से 1960 तक शर्मा जी वनस्थली विद्यापीठ में संस्कृत के प्राध्यापक रहे। माघ शुक्ला 13 सं० 2018 वि० दिनांक 29 जनवरी 1961 रविवार के दिन पं० जयदेव शर्मा का निधन हुआ।

श्री पं० जयदेव विद्यालंकार रचित ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है —

1. ऋग्वेद भाषा भाष्य (7 भाग),
2. यजुर्वेद भाषा भाष्य (2 भाग),
3. सामवेद भाषा भाष्य (1 भाग),
4. अथर्ववेद भाषा भाष्य (4 भाग),
5. माधवानुक्रमणी—ऋग्वेद के भाष्यकार वेंकट माधव ने ऋग्वेद के आठों अष्टकों के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में स्वर, आख्यात, नियत छन्द आदि आठ विषयों की विवेचना की है। पं. जयदेव शर्मा ने इस ग्रन्थ का भाष्यानुवाद किया।
6. ईशोपनिषद् भाषा भाष्य'

7. यमयमी सूक्त व्याख्या,
8. अथर्ववेद और जादू टोना— आर्यसाहित्य मण्डल अजमेर से प्रकाशित।
9. क्या वेद में इतिहास है ? श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के वेद में इतिहास विषयक विचारों का सप्रमाण खण्डन। आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर से 2010 वि. में प्रकाशित।
10. पुराण मत पर्यालोचन—आचार्य रामदेव जी के सहलेखन में लिखा गया पुराणालोचन विषयक ग्रन्थ। गुरुकुल कांगड़ी से 1976 वि. (1919) में प्रकाशित।
11. हैदराबाद सत्याग्रह का रक्त रंजित इतिहास—सूर्यदेव शर्मा के सहलेखन में आर्य साहित्य मण्डल अजमेर से 1947 में प्रकाशित।
12. आर्य समाज के उज्ज्वल रत्न—आर्य साहित्य मण्डल अजमेर से प्रकाशित।
13. स्वामी दयानन्द सरस्वती के यजुर्वेद भाष्य तथा पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के यजुर्वेद भाष्य विवरण की तुलना—अध्याय 1 से 10 पर्यन्त परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा 1950 में प्रकाशित।
14. अप्रकाशित ग्रन्थ—शेक्सपीयर के कुछ नाटकों का संस्कृतानुवाद।

—प्रो० भवानीलाल 'भारतीय'

—अध्यक्ष दयानन्द पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

(आर्यसन्देश, 14-1-90)

परमेश्वर का प्रधान नाम ओइम्।

ओइम् जिसका नाम है, ओर जो कभी नष्ट नहीं होता, उसी की उपासना करनी योग्य है, अन्य की नहीं।

सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान नाम और निज नाम ओ३म् को कहा है अन्य सब गौणिक नाम हैं।

सब वेद, सब धर्मानुष्ठानरूप तपश्चरण जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्याश्रम करते हैं, उसका नाम ओ३म् है।

---महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान्, तर्क शिरोमणि एवं प्रगल्भ लेखक तथा शास्त्रार्थ महारथी स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का जन्म माघ कृष्णा दशमी संवत् 1918 विक्रमी को लुधियाना के जगरांवा ग्राम में हुआ था। स्वामी दर्शनानन्द का पूर्वनाम—नेतराम और फिर कृपाराम था। वे अद्वैत के प्रभाव में थे तथा एक बार उन्होंने महर्षि दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करने का विचार किया था। नवीन वेदान्त की आलोचना में स्वामी जी महाराज की युक्तियों को सुनकर उनका नशा हिरन हो गया और वे उनके अनुयायी बन गए।

पं० कृपाराम ने काशी में रहकर अध्ययन किया। वहीं पर उन्होंने 'तिमिर नाशक' प्रेस की स्थापना की, जहां से वे विविध शास्त्र ग्रन्थों का प्रकाशन करते थे तथा उन्हें निःशुल्क वितरित किया करते थे। उन्होंने स्वामी मनीषानन्द जैसे ख्याति प्राप्त विद्वान से शास्त्राध्ययन किया तथा आगे चलकर आर्यसमाज के उत्साही उपदेशक, व्याख्याता तथा शास्त्रार्थ महारथी बने।

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने काशी में सनातन धर्म के विद्वान पं० शिवकुमार शास्त्री से भी शास्त्रार्थ किया था। उन्होंने अनेक शास्त्रार्थ किए तथा वैदिक धर्म की ध्वजा को ऊँचा उठाया। बिजनौर में 'प्रायश्चित्त' विषय पर किया गया शास्त्रार्थ वैदिक साहित्य की अमूल्य थाती है।

स्वामी दर्शनानन्द पत्रकार भी थे। उन्होंने 'तिमिर नाशक' साप्ताहिक भी चलाया, दानापुर से प्रकाशित 'आर्यावर्त' का सम्पादन भी किया तथा 'वेदप्रचारक' और 'भारत उद्धार' नामक पत्रों का प्रकाशन भी प्रारंभ किया। दिल्ली से उन्होंने 'वैदिक धर्म' तथा 'वैदिक मैगजीन' नामक पत्र निकाले। उन्होंने गुरुकुल सिकन्दराबाद की स्थापना करके वहाँ से 'गुरुकुल समाचार' नामक पत्र भी निकाला। हरिज्ञान मन्दिर लाहौर से उन्होंने 'ऋषि दयानन्द' नामक पत्र निकाला था। सिकन्दराबाद के पश्चात् उन्होंने बदायूं में गुरुकुल की स्थापना की। आगे चलकर उन्होंने मुजफ्फर नगर में 'बिरालसी' में गुरुकुल शुरू किया।। 'गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर' उनका कीर्ति स्तम्भ है।

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज एक लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार भी थे। उनका सम्पूर्ण वाङ्मय 'दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह' के छः भागों में प्राप्य है। 'आर्यसिद्धान्त मुक्तावली' और 'उपनिषत् प्रकाश' भी प्राप्य हैं। गोविन्दराम हासानन्द और मधुर प्रकाशन ने उनके साहित्य को जन जन तक पहुँचाने में विशेष सहयोग दिया है।

स्वामी जी महाराज का खण्डनात्मक साहित्य प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है। आर्यसमाज के प्रचारकों को उस साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। उनके निधन पर लाला लाजपत राय ने कहा था—"जिस समय हमें स्वामी दर्शनानन्द का स्मरण आता है, आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है। उनमें ऐसे गुण थे, जो बहुत कम मनुष्यों में देखे जाते हैं। उस व्यक्ति की वाणी दो धारी तलवार की भाँति ऐसी तीव्रता से, दक्षता से चलती थी कि आक्षेपकर्ताओं के आक्षेप कट-कट कर गिरते थे।"

उस ऋषिवर को हमारा शतश: प्रणाम।

—डा. धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 28-1-90)

परमपुरुष परमात्मा।

जो सबको शिक्षा देने हारा, सूक्ष्म से सूक्ष्म, स्वप्रकाशस्वरूप, समाधिस्थ, बुद्धि से जानने योग्य है, उसको परमपुरुष जानना चाहिये।

---महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्वामी स्वतन्त्रतानन्द महाराज

भारतीय स्वाधीनता समर के अमर सेनानी लाला लाजपतराय, शास्त्रार्थ समर के विजयी योद्धा, आर्य गौरव स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज, ओजस्वी वक्ता एवं दृढ़ निश्चयी स्वामी सत्यदेव परिव्राजक तथा हैदराबाद सत्याग्रह के वीर सेनानी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज—इन सभी महापुरुषों की जन्मस्थली होने का गौरव पंजाब के लुधियाना जिले को है।

स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज का जन्म ग्राम लोही के सरदार केहर सिह के घर में विक्रमी संवत् 1934 के पौष मास की पूर्णमासी को हुआ था। सरदार केहर सिंह अपने पुत्र को ऊँची से ऊँची शिक्षा देना चाहते थे, परन्तु उस वीर बालक की आकांक्षाएं प्रारम्भ से ही बाह्योन्मुखी थीं। वह कुछ साधु सन्तों के सम्पर्क में आया और उसके जीवन में ऐसा परिवर्तन आया कि वह घर-बार छोड़ चला। उसका विवाह भी हो चुका था, पर वह तो सांसारिक एवं पारिवारिक सभी बन्धनों से मुक्त हो चुका था।

उस वीर बालक ने आग चलकर अपना जीवन आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती को समर्पित कर दिया और उसके जीवन का एक-एक क्षण महर्षि की विचारधारा का प्रचार-प्रसार करने में लग गया। अपने आरम्भिक काल में वह गुरुद्वारे में गुरुवाणी का पाठ सुना करते थे। तभी उसने एक बार महर्षि दयानन्द का भाषण सुना और उस भाषण का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने गीता और वेदों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। उनके विचार चिन्तन में गुरुवाणी और वैदिक विचार धारा का अपूर्व संगम बना। इन दिनों का समन्वित रूप स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व में उपलब्ध है।

स्वामी स्वतन्त्रतानन्द ने विदेशों में वेद का प्रचार किया। वे बर्मा, मोरिशस, दक्षिण अफ्रीका, सिंगापुर तथा अन्य अनेक देशों में गए। भारत का कोई प्रान्त उनकी प्रचार यात्रा से अछूता न रहा। वे दिन में केवल एक बार भोजन करते थे। उस दृढ़व्रती का जीवन सदाचार की भट्टी में तपा था। स्वामी जी का जीवन संघर्षमय था। स्वाधीनता संग्राम में उन्होंने अपूर्व योगदान दिया। वे लाहौर के शाही किले में बन्द भी रहे। लोहारू में उन्होंने सत्याग्रह किया था। स्वामी जी महाराज का हैदराबाद सत्याग्रह को दिया योगदान आर्यसमाज के इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेगा। सत्याग्रह के दौरान उनका सारा समय शोलापुर और हैदराबाद में ही बीता। दीनानगर का दयानन्द मठ उनका एक बहुत बड़ा स्मारक है। स्वामी जी महाराज हर प्रकार के

अत्याचार के विरुद्ध थे । उनकी मान्यता थी 'कि कार्य वा साधयेयं देहं वा पातयेयम् ।' उन्होंने अन्याय एवं अत्याचार तथा भ्रष्टाचार के विरुद्ध सदा अपने को सर्वात्मना समर्पित किया । उनका कहना था कि यदि आर्यसमाजी दोष रहित हों, तभी भ्रष्टाचार निवारण में सफल हो सकता है । अत: उसे पहले अपने जीवन का निर्माण करना चाहिए ।

स्वामी जी के जन्म दिन पर हमारी उनके प्रति विनत श्रद्धांजलि । हमारी कामना है कि उनके तप और त्याग की ज्योति हम सभी का मार्गदर्शन करती रहे ।

—मूलचन्द गुप्त

(आर्यसन्देश, 4-2-90)

परमात्मा और जीवात्मा ।

जहाँ-जहाँ सर्वज्ञादि विषेशण हों वहां-वहां परमात्मा और जहाँ-जहाँ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुख और अल्पज्ञादि विशेषण हों वहाँ वहाँ जीव का ग्रहण होता है । ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये, क्योंकि परमेश्वर का जन्म मरण कभी नहीं होता ।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्वामी श्रद्धानन्द

स्वामी श्रद्धानन्द के तेईस दिसम्बर सन् 1926 के बलिदान के विषय में पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्म कथा—मेरी कहानी में पृष्ठ 233-234 पर जो उल्लेनीय भाव व्यक्त किये हैं वे यहाँ प्रस्तुत हैं। —सम्पादक

"साल 1926 के आखिर में हिन्दुस्तान में एक भारी दुःखद घटना से अंधेरा-सा छा गया। इस घटना से हिन्दुस्तान भर घृणा व रोष से कांप उठा। उससे पता चलता था कि जातीय वैमनस्य हमारे लोगों को कितना पीछे गिरा सकता था।

स्वामी श्रद्धानन्द को, जबकि वे बीमारी में चारपाई पर पड़े हुए थे, एक धर्मान्ध मुसलमान ने कतल कर दिया। जिस पुरुष ने गोरखों की संगीनों के सामने अपनी छाती खोल दी थी और उनकी गोलियो का सामना किया था उसकी कैसी मौत!

करीब-करीब आठ वर्ष पहले इसी आर्यसमाजी नेता ने दिल्ली की विशाल जामा मस्जिद की वेदी पर खड़े होकर हिन्दुओं और मुसलमानों की एक बहुत बड़ी सभा को एकता का और हिन्दुस्तान की आजादी का उपदेश दिया था। उस विशाल भीड़ ने "हिन्दू-मुसलमानों की जय" के शोर से उनका स्वागत किया था। और मस्जिद से बाहर गलियों में उन्होंने उस ध्वनि पर अपने खून की एक संयुक्त मोहर लगा दी थी। और अब अपने ही देश-भाई द्वारा मारे जाकर उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। हत्यारा यह समझता था कि वह एक ऐसा अच्छा काम कर रहा है जो उसे बहिश्त को ले जायेगा।

विशुद्ध शारीरिक साहस का, किसी भी अच्छे काम में शारीरिक तकलीफ सहने और मौत तक की परवाह न करने वाली हिम्मत का मैं हमेशा से प्रशंसक रहा हूं। मेरा ख्याल है कि हम में ज्यादातर लोग उस तरह की हिम्मत की तारीफ करते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द में इस निडरता की मात्रा आश्चर्यजनक थी। लम्बा कद, भव्य मूर्ति, संन्यासी के वेश में बहुत उम्र हो जाने पर भी बिल्कुल सीधी चमकती हुई आंखें और चेहरे पर कभी-कभी दूसरों की कमजोरियों पर आने वाली चिड़-चिड़ाहट में या गुस्से की छाया का गुजरना इस सजीव, तस्वीर को कैसे भूल सकता हूं। अकसर वह मेरी आँखों के सामने आ जाती है।'

—पं. जवाहरलाल नेहरू
(आर्यसन्देश, 18-2-90)

पण्डित अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

अब से लगभग सत्तर वर्ष पूर्व जब भारत में हिन्दी पत्रकारिता का कोई आदरणीय स्थान न था, स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने 'श्रद्धा' और 'विजय' साप्ताहिक पत्र निकाल कर इस दिशा में एक नया युग प्रारम्भ किया था। फिर तो काशी से 'आज', कानपुर से 'प्रताप', आगरा से 'सैनिक', नागपुर से 'प्रणवीर', दिल्ली से 'अर्जुन' और कलकत्ता से 'विश्वमित्र' आदि कितने ही हिन्दी-पत्र निकलने लगे। कई अंग्रेजी अखबारों ने अपने पत्रों के हिन्दी-संस्करण भी निकाले। दिल्ली का 'हिन्दुस्तान टाइम्स' उनमें प्रमुख था। उसने 'दैनिक हिन्दुस्तान' के नाम से हिन्दी संस्करण निकाला। जिसका जनता ने हृदय से स्वागत किया। स्व० श्री अवनीन्द्र कुमार जी विद्यालंकार ने अपने जीवन का बड़ा भाग इसी दैनिक 'हिन्दुस्तान' को समर्पित किया।

गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार से 1928 में शिक्षा समाप्ति के पश्चात् लाहौर से प्रकाशित 'आर्य' साप्ताहिक के प्रधान सम्पादक के रूप में जीवन आरम्भ किया। तत्पश्चात् बिहार विद्यापीठ में राजनीति के प्राध्यापक रहे। स्वतंत्रता संग्राम में कार्य करते हुए कई प्रान्तिक एवं साप्ताहिक बुलेटिन निकाले। कानपुर कांग्रेस के तीन वर्ष तक सभापति भी रहे। सन् 1934 में दिल्ली आए और अन्तिम समय तक हिन्दी पत्रकारिता से जुड़े रहे।

1934 से 1950 तक के 26 वर्षों में आपने दैनिक नवयुग, दैनिक नवभारत टाइम्स, दैनिक हिन्दुस्तान दिल्ली में प्रधान सम्पादक, संयुक्त सम्पादक के रूप में कार्य कर राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की।

सन् 1950 से स्वतंत्र पत्रकार के रूप में कार्य किया। श्री अवनीन्द्र जी की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, अर्थशास्त्र, ऐतिहासिक और वर्तमान राजनीति विषयों पर गहरी पैठ थी। उन्होंने लिखा और खूब लिखा। उनके युग के प्रायः सभी हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख प्रकाशित होते थे।

श्री अवनीन्द्र जी ने हिन्दी के प्रचार में विशेष योगदान दिया। वे दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संस्थापकों में से एक थे। वे कई वष तक सम्मेलन के प्रचार मंत्री रहे। वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की स्थायी समिति के 1950 से सदस्य रहे। हिन्दी साहित्य परिषद् की दिल्ली में स्थापना की और 1955 तक उसके प्रधान मंत्री रहे।

उन्होंने कई पुस्तकें भी लिखीं, 'सरल अर्थशास्त्र', 'पंचवर्षीय सिंचाई बिजली

योजना', 'सामुदायिक योजना', 'हमारे राष्ट्रपति राधाकृष्णन्', 'मालवीय जी', 'भारत ज्ञान कोश (वार्षिकी)', 'विश्व ज्ञान कोश', 'हिंदुस्तान वार्षिकी', 'नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के 'हिन्दी विश्व कोष', के कुछ अध्याय भी लिखे। बच्चों के लिए 'बकरी गाँव खा गई' बहुत ही रोचक और 'आवला दान' जैसी महत्व-पूर्ण और शिक्षाप्रद पुस्तकें लिखीं।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में डा० सत्यकेतु की शिष्य मण्डली के सदस्य होने के कारण श्री अवनीन्द्र जी को आर्यसमाज से अत्यधिक प्रेम रहा। उन्होंने ही मिन्टो रोड स्थित सरकारी क्वाटरों में आर्यसमाज की स्थापना की थी।

स्वतंत्र-पत्रकारिता का पूरा समय आपने आर्य पत्रों के लिए अपने शोधपूर्ण लेख लिखने में लगाया। आपने जहाँ महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों, आर्यसमाज के कार्यक्रमों तथा हिन्दुत्व की महत्ता पर शोध लेख लिखे, वहाँ सरकार की तुष्टिकरण-नीतियों पर भी लगातार चोट कीं। आपके लेख प्रायः सार्वदेशिक साप्ताहिक तथा अन्य आर्य-पत्रों में प्रकाशित होते रहे।

आपका निधन 3 मार्च 1986 को नई दिल्ली में हुआ।

—सुशीला शास्त्री, नई दिल्ली
(आर्यसन्देश, 4-3-90)

ईश्वर की न्यायव्यवस्था।

जीव जिसका मन से ध्यान करता उसको वाणी से बोलता, जिसको वाणी से बोलता उसको कर्म से करता, उसी को प्राप्त होता है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जब दुष्ट कर्म करने वाले जीव ईश्वर की न्यायरूपी व्यवस्था से दुःख रूप फल पाते तब रोते हैं।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

पण्डित अयोध्या प्रसाद वैदिक मिशनरी

अद्भुत वाग्मी, अपूर्व दार्शनिक तथा विश्व प्रचारक पं० अयोध्याप्रसाद का जन्म 16 मार्च 1888 को बिहार प्रान्त के गया जिले की नवादा तहसील के आमुआ नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम बाबू वंशीधरलाल तथा माता का नाम श्रीमती गणेशकुमारी था। पिता रांची के डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय में बेंच क्लर्क थे। वे अरब तथा फारसी भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। कहते हैं कि उन्होंने अंग्रेजी के वेबस्टर शब्द कोश को कण्ठस्थ कर रखा था। बाल्यकाल में अयोध्याप्रसाद को तांत्रिक साधनों में दिलचस्पी पैदा हुई और वे श्मशान में रहकर विभिन्न प्रकार की तांत्रिक साधनाएँ करने लगे। तांत्रिकों के बीभत्स क्रिया कलापों में रुचि लेने वाले पुत्र को देखकर पिता को बड़ी निराशा हुई।

कुलगत प्रथा के अनुसार पिता ने बालक की शिक्षा के लिए एक मौलवी की नियुक्ति की जिन से उन्होंने उर्दू, फारसी तथा अरबी का अध्ययन किया। इन भाषाओं पर इनका असाधारण अधिकार हो गया। अब वे अरबी तथा फारसी में धाराप्रवाह रूप में भाषण देने लगे। इन भाषाओं के अध्ययन ने अयोध्याप्रसाद जी को हिन्दू धर्म से विरत कर दिया। उनका विश्वास इस्लाम की श्रेष्ठता में दृढ़ हो गया। इन दिनों वे 'गनीमत' नाम से उर्दू, फारसी तथा अरबी में काव्य रचना भी करते थे। प्रचलित प्रथा के अनुसार 16 वर्ष की आयु में इनका विवाह लोहरदगा के श्री गिरवरधारी लाल की पुत्री किशोरीदेवी के साथ 1904 में सम्पन्न हुआ। वधू की आयु उस समय मात्र साढ़े नौ वर्ष की थी।

आर्यसमाज में प्रवेश—आर्यसमाज में अपने प्रवेश सम्बन्धी संस्मरणों को सुनाते हुए पण्डित अयोध्याप्रसाद ने पं० रमाकान्त शास्त्री को इस प्रकार बताया था—"मैं जिस कुल में पैदा हुआ था, उस पर इस्लाम की बड़ी छाप थी। फलस्वरूप मेरे पिता जी ने मुझे एक आलिम फाजिल मौलवी साहब के मकतब में उर्दू और फारसी पढ़ने के लिए भर्ती करा दिया था। एक दिन मेरे मामू साहब ने कहा, "अजुध्या, आज कल तुम क्या पढ़ रहे हो? बालक अजुध्या ने मौलवी साहब की बड़ाई करते हुए इस्लाम की खूबियाँ बताई और साथ ही हिन्दू धर्म की खराबियाँ भी। मामू कट्टर आर्यसमाजी थे। उन्होंने कहा, 'अजुध्या एक बार तुम सत्यार्थ-प्रकाश को पढ लेते तो तुम्हारी आंखें खुल जातीं और तुम आर्यधर्म में कोई खराबी नहीं पाते।' अपने मामा की प्रेरणा से उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ना प्रारम्भ किया पहले इस ग्रंथ का 14वां समुल्लास पढ़ा, तत्पश्चात 13वां। इस प्रकार इस्लाम

और ईसाइयत की सब त्रुटियां जानकर वे अपने मौलवी साहब से ही नाना प्रकार के प्रश्न पूछने लगे। मौलवी बड़े चकराये। इस प्रकार सत्यार्थ-प्रकाश के माध्यम से उन्हें आर्यसमाज तथा उसके प्रवर्त्तक का परिचय मिला। पं० लेखराम लिखित 'हुज्जतुल इस्लाम' पढ़ कर उन्हें कुरान की अध्ययन की प्रेरणा मिली और वे तुलनात्मक दृष्टि से विभिन्न धर्मों के अध्ययन में तत्पर हुए।

1908 में उन्होंने प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात इण्टरमीडियेट की शिक्षा के लिए हजारीबाग के सेंट कोलम्बस कालेज में प्रवेश लिया। यहां उनका क्रान्तिकारियों से सम्पर्क हुआ और वे शीघ्र ही सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन में सम्मिलित हो गए। इस पर पिता ने उन्हें हजारीबाग से हटाकर भागलपुर भेज दिया। जहां रहकर उन्होंने 1911 में इण्टरमीडियेट की परीक्षा उत्तीर्ण की। क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लेते समय अयोध्याप्रसाद जी ने उत्तर भारत के अनेक नगरों का भ्रमण किया और आतंकवादियों की मण्डली में 'सिसिर जी' के छद्म नाम से प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार की गैर कानूनी गतिविधियों में भाग लेने के कारण उनके पिता का रुष्ट होना स्वाभाविक ही था। पिता ने पुत्र की पढ़ाई का व्यय देना बन्द कर दिया। इस पर रांची के प्रसिद्ध आर्यनेता श्री बालकृष्ण सहाय ने पिता पुत्र के बीच समझौता कराने का प्रयत्न किया। इन्हीं की प्रेरणा से अयोध्याप्रसाद जी ने संस्कृत के धुरन्धर विद्वान महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा से संस्कृत भाषा तथा शास्त्रों का विस्तृत अध्ययन किया। वे अपने संस्कृत ज्ञान तथा शास्त्र नैपुण्य के लिए शर्मा जी का श्रद्धा पूर्वक स्मरण करते थे।

पटना से संस्कृत का अध्ययन समाप्त कर 1911 में वे कलकत्ता आये। यहां वे हिन्दू होस्टल में रहने लगे, जहां पंजाब के प्रसिद्ध नेता डा० गोकुलचन्द नारंग तथा डा. राजेन्द्रप्रसाद जैसे लोग अपने छात्रकाल में निवास करते थे। वे पहले प्रेसिडेन्सी कालेज में भर्ती हुए, उसके पश्चात् सिटी कालेज में पढ़ने लगे। यहां रहकर उन्होंने इतिहास, दर्शन, तुलनात्मक धर्म जैसे विषयों का गम्भीर अध्ययन किया। अपने अध्ययन की भूख को शान्त करने के लिए वे कलकत्ता के विभिन्न धर्मस्थानों के पुस्तकालयों में जाते तथा महत्त्वपूर्ण ग्रंथों को स्वय भी क्रय कर के पढ़ते। कलकत्ता में पढ़ने वाले बिहार के छात्रों ने 'बिहार छात्र संघ' की स्थापना की। राजेन्द्र बाबू इस संस्था के अध्यक्ष थे, जब कि अयोध्याप्रसाद जी मंत्री। 1915 ई. में उन्होंने बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् एम. ए. और बी. एल. का पूर्वार्द्ध भी किया। कलकत्ता निवासकाल में वे आर्यसमाज के निकट सम्पर्क में आये। आर्यसमाज कलकत्ता में नियमित रूप से उनके भाषण होने लगे। अब वे इस आर्यसमाज के पुरोहित तथा उपदेशक के रूप में भी कार्य करने लगे। इनकी अपूर्व वाग्मिता, तर्क कौशल तथा गम्भीर स्वाध्याय से सभी लोग प्रभावित हुए। आर्य धर्म के अतिरिक्त उन्होंने बौद्ध, जैन, इस्लाम तथा ईसाइयत का भी विस्तृत अध्ययन किया था। 1920 में प्रारम्भ किये गये असहयोग आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय रूप में भाग लिया। इसी वर्ष कलकत्ते

के कालेज स्क्वायर में सत्यार्थप्रकाश के समुल्लास में प्रतिपादित राजधर्म पर भाषण करने पर पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार किया और अदालत द्वारा डेढ़ वर्ष का कारावास दिया गया। राजनीतिक बन्दी के रूप में वे अलीपुर के केन्द्रीय कारागार में रखे गये। कारागार से मुक्त होने पर वे एक विद्यालय में मुख्याध्यापक का कार्य करने लगे। विश्वधर्म सम्मेलन में पं. अयोध्याप्रसाद की बड़ी इच्छा थी कि वे विदेशों में जाकर वैदिक धर्म का प्रचार करें। इस्लामी देशों में धर्म-प्रचारार्थ जाने की भी उन्हें उत्कट अभिलाषा थी। विदेश यात्रा का अवसर उन्हें 1933 में मिला जब वे विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने हेतु अमेरिका के शिकागो नगर में गये। आर्यसमाज कलकत्ता तथा बम्बई से ही वे इस सम्मेलन में वैदिक धर्म के प्रवक्ता के रूप में सम्मिलित हुए थे। सेठ युगलकिशोर बिड़ला ने उनकी विदेश यात्रा के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की थी। जुलाई 1933 में वे अमेरिका पहुंचे। धर्म सम्मेलन में 'वैदिक धर्म की महत्ता और विश्वशान्ति' विषय पर उनका प्रभावशाली भाषण हुआ। वैदिक शिक्षाओं को स्वीकार करने से ही विश्वशान्ति सम्भव है, इस धारणा का प्रबल युक्तियों के आधार पर प्रतिपादन करते हुए उन्होंने सम्मेलन में उपस्थित प्रतिनिधियों के समक्ष वेदों की उदात्त विचारधारा को प्रस्तुत किया। पं. अयोध्याप्रसाद के भाषण का प्रभाव सम्मेलन पर इस रूप में भी लक्षित हुआ कि सम्मेलन की पूरी अवधि में उसकी दैनन्दित कार्यवाही का प्रारम्भ वेद मन्त्रों से तथा समाप्ति वैदिक शांतिपाठ से होती थी।

इसी सम्मेलन में पण्डित जी ने वैदिक अभिवादन 'नमस्ते' की बड़ी हृदयग्राही व्याख्या की। उन्होंने बताया कि आर्य लोग दोनों हाथ जोड़ कर तथा उन्हें हृदय के निकट लाकर, पुनः नतमस्तक हो 'नमस्ते' का उच्चारण करते हैं। इन क्रियाओं का अभिप्राय यह है कि 'नमस्ते' के द्वारा हम अपने हृदय, हाथ तथा मस्तिष्क तीनों की प्रवृत्तियों का संयोजन करते हैं। हृदय आत्मशक्ति का प्रतीक है, भुजाएं शारीरिक बल की द्योतक हैं तथा मस्तिष्क मानसिक शक्तियों का केन्द्र है। इस प्रकार नमस्ते के उच्चारण तथा उसके साथ थोड़ा मस्तक झुका कर दोनों हाथों को जोड़ते हुए हम इन भावों को व्यक्त करते हैं—

With all the physical force in my arms, with all my mental force in my head, and with all the love in my heart. I pay respect to the soul with in you.

कहना नहीं होगा कि नमस्ते की इस अद्भुत किन्तु तुष्टिप्रद व्याख्या से सम्मेलन में उपस्थित पाश्चात्य जनसमूह बड़ा प्रभावित हुआ था।

उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका में वैदिक धर्म का प्रचार करने के पश्चात् पण्डित जी ने डच गायना, ट्रिनिडाड आदि देशों में धर्म प्रचारार्थ भ्रमण किया। ट्रिनिडाड में एक कट्टरपन्थी सनातनधर्मी ने उन्हें भोजन के लिए आमन्त्रित किया। यह जानकर कि पण्डित अयोध्याप्रसाद आर्यसमाज के प्रखर विद्वान् तथा शास्त्रार्थ कला निष्णात महारथी हैं, उसने द्वेषवश पण्डित जी को भोजन में विष दे दिया। यद्यपि भोजन के

विष मिश्रित ग्रास को जिह्वा पर रखने मात्र से ही पं० जी को भोजन के विष सम्पृक्त होने का ज्ञान हो गया था, तथा उन्होंने अवशिष्ट भोजन को त्याग भी दिया, किन्तु तीव्र विष का घातक प्रभाव उनके शरीर पर पड़े बिना नहीं रहा। लंदन आते-आते वे बीमार पड़ गए तथा चिकित्सा हेतु उन्हें यहां अस्पताल में 6 मास तक रहना पड़ा। यद्यपि वे स्वस्थ हो गये, किन्तु उनकी हृदय क्रिया विष से आजीवन प्रभावित रही।

विदेश यात्रा से लौट कर पं. अयोध्याप्रसाद ने कलकत्ता को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाया। उन के जीवन के अवशिष्ट दिन धर्मप्रचार, स्वाध्याय, चिन्तन तथा मनन में ही व्यतीत हुए। देहान्त से पूर्व उन्होंने अपना पुस्तक संग्रह, जिसमें लगभग 25 हजार बहुमूल्य एवं दुर्लभ ग्रन्थों का संग्रह था, महर्षि दयानन्द जन्म स्मारक ट्रस्ट, टंकारा (गुजरात) को भेंट कर दिया। उन के इस पुस्तकालय का आनुमानिक मूल्य 2 लाख रुपया आंका गया था। पं. अयोध्याप्रसाद के जीवन के अन्तिम दिन सुखद नहीं रहे। दुर्बल स्वास्थ्य तथा हृदय रोग से ग्रस्त होकर वे अपने 85 बहू बाजार स्थित निवास पर वर्षों कष्ट भोगते रहे। अन्ततः 11 मार्च 1965 को 77 वर्ष की आयु प्राप्त कर उनका निधन हुआ।

—प्रो० भवानीलाल भारतीय
(आर्यसन्देश, 11-3-90)

परमेश्वर का नाम लक्ष्मी।

जो सब चराचर जगत को देखता चिह्नित अर्थात् दृश्य बनाता जैसे शरीर के नेत्र, नासिका और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण, चन्द्र, सूर्यादि चिह्न बनाता, तथा सबको देखता, सब शोभाओं की शोभा और जो वेदादिशास्त्रों वा धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम लक्ष्मी है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्वामी परमानन्द

उत्तर प्रदेश के शाहजहांपुर जनपद में एक सुन्दर उपनगर जलालाबाद है। इस उपनगर के चारों ओर दूर-दूर तक कोई आर्यसमाज मन्दिर अब से अनेक दशाब्दियों पूर्व नहीं था। अब से 70-80 वर्ष पूर्व स्वामी परमानन्द जी ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर यहां पर आर्यसमाज की स्थापना की थी।

स्वामी जी का पूर्व नाम श्री खयाली राम जी था। आप अपने नगर के बहुत ही प्रतिष्ठित एवम् ऐश्वर्य शाली सज्जन थे। अपने जीवन के आरम्भ काल में आर्य-समाज के सम्पर्क में न आ सकने के कारण आप कुछ व्यसनी हो गये थे। पर बाद में आप शाहजहांपुर जनपद के प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों तथा स्वतन्त्रता सेनानियों के साथ हो गये थे।

श्री खयालीराम जी प्रसिद्ध कपड़े के थोक व्यवसायी थे। व्यापार के काम से तथा देशभक्तों के साथ प्रायः आपको देश भ्रमण का अवसर भी मिलता था। ऐसी ही किसी यात्रा में आपका आर्यसमाज से सम्पर्क हो गया। बाद में अपने नगर में भी कई आर्यसमाजी विचारों के व्यक्ति मिल गये थे। सुन्दर सम्पर्क के कारण सारे दुर्व्यसन दूर कर श्री खयालीराम एक आर्य पुरुष बन चुके थे।

अब खयालीराम जी के नियमित रूप से तीन काम हो गये थे। अपने व्यवसाय का संचालन, देशभक्तों की सहायता एवं आर्यसमाज का प्रचार। इनकी पत्नी अपनी संतानों को छोड़ कर स्वर्ग धाम गई। अनेक लोगों ने दूसरे विवाह की प्रेरणा दी। परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

वैराग्य भावना प्रबल हो उठी थी। सारे सांसारिक कार्यों से उपराम होने लगे। महर्षि दयानन्द के सन्देश को जीवन में उतारने की ठान ली। अपनी पुत्री के विधवा होने पर समाज की रूढ़ियों को उसके अवरोध को एक ओर रख कर उसका पुनर्विवाह कर दिया। अपने विशाल कोठीनुमा निवास को बेच दिया। इस धन से जलालाबाद में प्रमुख स्थान पर भूमि क्रय कर के आर्यसमाज मन्दिर बनवा दिया। स्वयं अपनी दो पक्की दुकानें तथा गोदाम आदि आर्यसमाज के नाम कर दीं। बाद में इनके साथी व शिष्यों ने भी सहयोग कर के मन्दिर-निर्माण में सहयोग किया। आर्य-समाज मन्दिर में इनके अतिरिक्त निर्माण निधि में यदि दूसरा शिलालेख किसी का है तो वे हैं स्व० महाशय दीनानाथ जी। इन्होंने भी एक दुकान तथा यज्ञशाला बनवा कर समाज को दान की थी।

उस समय आर्य जगत् के प्राण महात्मा नारायण स्वामी से संन्यास दीक्षा लेकर स्वामी परमानन्द बन गये। "शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर" वेद मन्त्र को अपने जीवन में साकार कर दिया। निर्धन अनाथों को आर्थिक सहायता एवम् स्थान स्थान के आर्यसमाजों को अधिकाधिक दान देना उनका स्वभाव बन गया। गुरुकुल वृन्दावन को कई सहस्र रुपये देकर एक निधि उन्होंने स्थापित की थी। आर्य प्रतिनिधि सभा उ०प्र० के मुख्यालय पर कूप का निर्माण कराया था। उनके नाम का पत्थर कभी मैंने वहां देखा था। इसी भांति अनेक आर्य संस्थाओं को सदैव प्रचुर धन दान करते रहे। अब से लगभग 18 वर्ष पूर्व 84 वर्ष की अवस्था में स्वामी जी का देहावसान हो गया था। लेखक ने उनके चरणों में बैठकर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की थी। अबोध बाल्यावस्था में जो भावनाएँ, स्वामी जी ने मेरे मन मस्तिष्क में भर दी थीं—वे ही मेरा पथ-प्रदर्शन करती रहती हैं।

—देवनारायण भारद्वाज
(आर्यसन्देश, 11-3-90)

परमेश्वर का नाम देव।

जो शुद्ध जगत् को क्रीड़ा कराने, धार्मिकों को जिताने की इच्छा युक्त, सब चेष्टा के साधनोपसाधनों का दाता, स्वयं प्रकाशस्वरूप, सबका प्रकाशक, प्रशंसा के योग्य, आप आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द देने हारा, मदोन्मतों का ताड़ने हारा, सबके शयनार्थ रात्रि और प्रलय का करने हारा, कामना के योग्य और ज्ञानस्वरूप है। इसलिये उस परमेश्वर का नाम देव है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

धर्ममूर्ति महात्मा हंसराज

प्रसिद्ध हिन्दी लेखक पूज्य पं. सन्तराम जी बी. ए. पुरानी बसी (होशियारपुर) ने "आर्य ज्योति" के 12-2-61 के ऋषि बोध अंक में "सच्चा ऋषि बोध उत्सव" शीर्षक लेख द्वारा निम्नलिखित शब्दों में धर्म का वास्तविक स्वरूप दिखा कर कड़वे सत्य का प्रकाश कर दिया—सामाजिक संबंधों को सुखद बनाने वाले नियमों का ही नाम धर्म है। स्वर्ग, नरक, देवलोक, पितृलोक, परमात्मा काला है या पीला, लम्बा है या चौड़ा, आत्मा जागता है या सोता; ऐसी बातें संसार के व्यवहार को सुखद बनाने में कुछ अधिक सहायता नहीं देतीं।

उपर्युक्त शब्दों में वर्णित वर्तमान युग के मानव धर्म तत्व को स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी ने पहिचाना था। इसलिए देश, जाति, धर्म की सेवा के लिए वह आर्यसमाज में प्रविष्ट हुए और सब कुछ उस पर न्यौछावर कर दिया। महात्मा जी ने विद्यार्थी जीवन में आर्यसमाज के लिए जितना कार्य किया उतना एक लग्न वाला आर्यसमाजी समस्त जीवन में नहीं कर सकता। क्या आर्यसमाज के प्रचार के लिए (Regenerator of Arya Vart) द्वारा सहायक सम्पादक रूपेण धाराप्रवाह और प्रगतिशील विचार देकर देश के शिक्षित नवयुवकों को आकर्षित करना साधारण काम था। कितना स्वाध्याय उन्हें करना पड़ा होगा।

लेखक के शीर्षक में महात्मा जी के नाम से पहले "धर्म मूर्ति" विशेषण के प्रयोग का आशय है उनके जीवन में मानव धर्मशास्त्री मनुस्मृति में बताये गये धर्म के दस लक्षण ओत-प्रोत थे। धर्म के पहिले लक्षण "धति" का उदाहरण आधुनिक युग में उनसे अच्छा मिलना असम्भव सा दीखता है। धैर्य की कसौटी पर वह पूरे उतरे। पाठक उनकी विपत्तियों का वर्णन पढ़कर रोमांचित हो जाएंगे। परन्तु ईश्वर भक्त महात्मा जी ने उन सब संकटों का ऐसे डटकर सामना किया मानो कुछ हुआ ही नहीं। वे समुद्र की भांति गम्भीर और शान्त थे।

सन् 1914 के आरम्भ में महात्मा जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री बलराज को राजनैतिक अपराध में पकड़ लिया गया और कई मास बाद उन पर दिल्ली में अभियोग चलाया गया। श्री बलराज जी की माता उनके पकड़े जाने के थोड़े दिन के अनन्तर ही रोगग्रस्त हो गयी थी। मृत्यु शैया पर तड़पती हुई माता के अपने प्यारे पुत्र को मिलने की उत्कृष्ट इच्छा प्रकट करने का चित्र एक कवि ने निम्नलिखित शब्दों में खींचा था।'

सह हो जाए किसी
सूरत निकलना जानका।

झूठ ही कोई कह दे
काश ! अब तो आए हैं ।।

महात्मा जी की धर्मपत्नी (वास्तविक अर्थों में अर्धांगिनी) ने पुत्र वियोग में प्राण त्याग दिये। श्री बलराज को पहले आजीवन कारावास (काला पानी) और फिर अपील पर 7 वर्ष की कैद हुई। भाई मुलकराज जी पर आर्थिक संकट आ पड़ा और कनिष्ठ पुत्र निमोनिया द्वारा ग्रस्त हो गया। इन सभी मुसीबतों का सहन करना लाला हंसराज जी जैसे धीर, वीर उदात्त महापुरुष का ही काम था।

संस्कृत के एक कवि का वचन है—

उदेति सविता ताम्रस्त-मेवास्तामेति वा।
सम्पतौ च विपतौ च महतामेकरुषता ।।

अर्थ—सूर्य उदय होते समय लाल और अस्त के समय भी लाल होता है वैसे ही सम्पत्ति और विपत्ति में महान पुरुष एक समान रहते हैं। सूर्य के दृष्टान्त के अनुसार महात्मा जी सुख दुःख में एक रूप होने के कारण भी महान आत्मा थे। उनके अनुपम धैर्य को देखकर उस दिव्य स्वरूप को कतिपय पत्रों ने "जीवित हरिश्चन्द्र" लिखा था।

इस लघु लेख में उस देवता के किस किस गुण का उल्लेख किया जाये। वह गुणों के भण्डार थे। उनका जीवन यज्ञमय था। एक-एक क्षण अनाथों, विधवाओं, अकाल पीड़ितों, आपत्ति ग्रस्तों और धनहीन विद्यार्थियों की सेवार्थ अर्पण था। मेरा यह दृढ़ मत है कि आर्यसमाज से महात्मा हंसराज को पृथक कर देने से आर्यसमाज की स्थिति रघुनाथ के बिना रघुवंश के समान हो जाती है।

महात्मा जी की महानता का अनुमान पाठक इससे लगा सकते हैं कि उन्होंने अपने विद्यार्थी काल में मुख्याध्यापक ईसाई के आर्य संस्कृति व वैदिक सभ्यता पर मिथ्या दोषारोपण के उत्तर में "कसिस हिन्द" के प्रमाण द्वारा उसे निराधार सिद्ध कर प्रधान शिक्षक को निरूत्तर कर दिया। फलस्वरूप वह हैड-मास्टर के कोप भाजन बनकर स्कूल से बहिष्कृत किये गए। ऐसे ही धर्माभिमानियों के संबंध में भर्तृहरि विरचित नीतिशतक का 18 वां श्लोक निम्न प्रकार है—

अम्योजिनावन विलास निवासमेव। हंसरूय हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्ध जल भेद विधौ प्रसिद्धां वेदग्ध्य कीर्तिमपहर्तुं मसौ समर्थः ।।

अर्थ—विधाता अत्यन्त मृदु होकर हंस का कमल बन निवास और विलास नष्ट कर सकता है परन्तु दूध पानी को पृथक्-पृथक् करने के चातुर्य के यश को हरने की शक्ति उसमें भी नहीं। भाव यह है कि महाजन संकटों के भय से कर्तव्यच्युत नहीं होते।

महात्मा मुन्शीराम जी के विरोधियों की भांति महात्मा हंसराज जी के प्रतिपक्षियों की संख्या भी पर्याप्त थी, पर जहां महात्मा मुन्शीराम जी पत्रों द्वारा आक्षेपों का उत्तर देते और लघु पुस्तिकाओं के अतिरिक्त उन्हें "दुःखी दिल की पुरदर्द दास्तां"

एक पोथा प्रकाशित करना पड़ा, वहाँ महात्मा हंसराज ने कड़ी से कड़ी आलोचनाओं की परवाह नहीं की। विरोध का नोटिस लेना तो एक ओर रहा। उन्होंने एक बार प्रिंसिपल दीवानचंद जी एम०ए० को कहा था कि मैं अपने आलोचकों को यह कहने का अवसर नहीं देना चाहता कि मैं उनके लेखों को पढ़ता हूं। है कोई ऐसा धैर्य मूर्ति इस घोर कलिकाल में। धन्य थे वह उदारमूर्ति जिन्होंने गुरुकुल छोड़ने के पूर्व महात्मा मुन्शीराम जी के गुरुकुल में पधारने के निमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार कर अपूर्व सरलता का परिचय दिया।

स्व० स्वामी सर्वदानन्द जी से अनेक आर्यों ने शिकायत की थी कि महात्मा हंसराज जी ने संन्यासी न बनकर आश्रम मर्यादा का उल्लंघन किया है। उनका यह उत्तर ध्यान देने योग्य है कि भगवां वेश धारण करके ही तो परिव्राजक नहीं बनता। यह शतप्रतिशत तथ्य है कि महात्मा जी का जीवन निष्काम ऋषि का सा था। मैं तो यह नि:संकोच कहने को तैयार हूं कि आर्यसमाज और अन्य संस्थाओं को त्याग की शिक्षा महात्मा जी ने ही दी। उन्होंने ही भारतीयों में साहस, उत्साह, बल और आत्म-विश्वास पैदा किया। लाहौर में सनातन धर्म कालेज स्थापित करने के उद्देश्य से बुलाई गई सभा में स्व० महाराजा सर प्रताप सिंह जम्मू व कश्मीर ने महात्मा जी को सम्बोधित कर कहा था, "हंसराज जी! एक हंसराज इनको भी दे दो।"

—डा० धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 22-4-90)

सीधा मार्ग।

सीधा माग वही होता है जिसमें सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, पक्षपातरहित न्याय, धर्म का आचरण करना आदि है और इससे विपरीत का त्याग करना।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

पं. गुरुदत्त विद्यार्थी

यह वर्ष पं. गुरुदत्त विद्यार्थी जी के बलिदान का शताब्दी वर्ष है। 26 अप्रैल 1864 को मुल्तान नगर (पाकिस्तान) में पंड़ित जी का जन्म हुआ था। कैसा संयोग है कि 26 अप्रैल को जन्मे इस वैदिक संस्कृति के अनुरागी ऋषि भक्त का जीवन भी मात्र 26 वर्ष का ही था।

पंडित जी जन्म काल से ही मेघावी थे। विद्यार्थी जीवन में ही इन्होंने नये-नये कीर्तिमान स्थापित किये। सन् 1886 में पं. गुरुदत्त जी ने एम. ए. की परीक्षा दी और उसमें बी.ए. की तरह सर्वप्रथम रहे। एम.ए. में उनका विषय भौतिक विज्ञान था। एम. ए. में उन्होंने इतने अंक प्राप्त किये जितने इनसे पूर्व किसी विद्यार्थी ने प्राप्त नहीं किये थे। इन्होंने नया कीर्तिमान स्थापित किया था। आश्चर्य तो यह था कि अध्ययन के दिनों में वे आर्यसमाज के कार्यक्रमों एवं उत्सवों में भी जाते रहे थे। इनके सहपाठियों ने इन्हें कभी शिक्षा के विषयों की पुस्तकें पढ़ते नहीं देखा था। यह पंडित जी की अद्भुत प्रतिभा का ही उदाहरण है। दो तीन वर्ष पंडित जी ने गवर्नमेन्ट कालेज लाहौर में भौतिकी के प्रोफेसर के रूप में अध्यापन भी किया। यह पहले भारतीय थे जिनको यह पद प्राप्त हुआ था, इससे पहले यहां के सब प्रोफेसर अंग्रेज ही थे। पंडित जी ने अनुभव किया कि विज्ञान के प्रोफेसर के रूप में सेवा करने के कारण वैदिक धर्म प्रचार एवं योगाभ्यास में बाधा आ रही है। अतः सेवा से त्यागपत्र दे दिया। पंडित जी को अतिरिक्त सहायक कमिश्नर पद पर नियुक्ति हेतु प्रस्ताव प्राप्त हुआ। दिनांक 12 अक्टूबर 1887 को लाहौर के जिलाधीश ने इन्हें एतदर्थ बुलाया, परन्तु पंडित जी ने उक्त प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। ऋषि ऋण से उऋण होने के लिए जो त्याग का उदाहरण पंडित जी के जीवन में दिखाई देता है उसकी उपमा अन्य ऋषि भक्तों में कदाचित ही दृष्टिगोचर होती है।

प्रायः देखा गया है कि विज्ञान के विद्यार्थी अध्यापन से अरुचि रखते हैं। ईश्वर की सत्ता में इन लोगों का विश्वास प्रायः नहीं होता। पं. गुरुदत्त भी ईश्वर की सत्ता के प्रति पूर्ण आस्थावान नहीं थे। अजमेर में ऋषि दयानन्द जी की अत्यन्त प्रभावशाली मृत्यु दृश्य को देखकर इनके हृदय में ईश्वर की सत्ता के प्रति अटूट विश्वास जाग्रत हुआ। इस घटना ने इनके जीवन को नयी दिशा दी। इसके पश्चात का इनका जीवन महर्षि दयानन्द के अपूर्ण कार्यों को पूर्ण करने के संकल्प उसके कार्यान्वयन में ही व्यतीत हुआ।

अजमेर से लाहौर पहुंचकर पंडित जी ने स्वामी दयानन्द के शिक्षा विषय विचारों को कार्यान्वित करने में लाला लाजपत राय एवं महात्मा हंसराज आदि महापुरुषों के साथ मिलकर दयानन्द-एंग्लो वैदिक कालेज की स्थापना से आरम्भ किया। इसकी सफलता के लिए इन्होंने रात्रि-दिवा अनथक परिश्रम किया। स्थान-स्थान पर प्रवचनों से जनता में जागृति उत्पन्न हुई और कुछ काल में ही पर्याप्त द्रव्य एवं धन संग्रह हो गया। दुख है कि डी. ए. वी. कालेज में ऋषि आज्ञा के अनुकूल संस्कृत को प्रमुख स्थान न मिलने के कारण इन्हें कालेज से विरत होना पड़ा। कालान्तर में पंडित जी ने एक उपदेशक श्रेणी खोली और अष्टाध्यायी पढ़ना पढ़ाना आरम्भ किया। इसमें छोटी बड़ी आयु के सभी विद्यार्थी आते थे। इस श्रेणी के एक विद्यार्थी गुरुदत्त के मित्र एक्टा असिस्टेन्ट कमिश्नर महोदय भी थे। पंडित जी संस्कृत का उद्धार कर इसे जन सामान्य की भाषा बनाकर वेदादि आर्यग्रन्थों को लोकप्रिय कर चहूँ दिशाओं में वैदिक धर्म की पताका फहराना चाहते थे। काल को पंडित जी का यह विचार स्वीकार नहीं था। इससे पूर्व कि यह कार्य आगे बढ़ता, वेदों एवं आर्य ग्रन्थों का अनुरागी यह जीवन हमसे छिन गया। मात्र 26 वर्ष की ही वय पंडित जी की थी। इस अल्प जीवन काल में पंडित जी ने प्रवचनों, लेखन आदि के माध्यम से वैदिक धर्म की जो सेवा की, वह अकथनीय है। पंडित जी का सृजित साहित्य-सम्प्रत्ति अप्राप्य है। बलिदान शताब्दी वर्ष के अवसर पर उनका समस्त अप्राप्य साहित्य ग्रन्थावली के रूप में प्रकाशित किया जाना चाहिए। पंडित जी के 127 वें जन्मदिवस पर उनके निर्मल, निस्वार्थ एवं त्यागपूर्ण जीवन का स्मरण करते हुए उनके अपूर्ण कार्यों को पूर्ण करने का संकल्प सभी आर्यबन्धुओं को लेना चाहिए। यही उनके जन्म दिवस एवं बलिदान शताब्दी वर्ष में उनको श्रद्धांजलि होगी।

—डा. धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 22-4-90)

पण्डित जे.पी. चौधरी काव्यतीतर्थ

खण्डन मण्डन प्रधान साहित्य के प्रगल्भ लेखक तथा उत्कृष्ट शास्त्रार्थी पं. जे. पी. चौधरी का जन्म मिर्जापुर जिले के अदलहाट ग्राम में श्री रामगुलाम चौधरी के यहाँ 1 मई 1881 को हुआ। सत्रह वर्ष की आयु में आपने उर्दू मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की। पुन: 1900 ई. में नार्मल परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। तदन्तर आप मिशन हाई स्कूल मिर्जापुर में अध्यापक का कार्य करने लगे। इसी बीच आपने फारसी विषय लेकर एन्ट्रैन्स परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। अब इन्हें मध्य प्रदेश के चार राज्य में शिक्षा विभाग के निरीक्षक का पद मिल गया। यहां से ये बिहार चले गए और रांची के सेंट पाल हाई स्कूल में संस्कृत अध्यापन करने लगे। चार वर्ष तक इस पद पर रहकर वे जर्मन मिशन हाई स्कूल में संस्कृत के प्रधानाध्यापक बन गए। यहीं से आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से ऋग्वेद की मध्यमा तथा काव्यतीर्थ परीक्षायें उत्तीर्ण कर लीं तथा वाराणसी के डी. ए.वी. कालेज में संस्कृत प्रवक्ता पद पर नियुक्त हो गए।

चौधरी जी का संस्कृत ग्रन्थों का स्वाध्याय अत्यन्त विशाल तथा गम्भीर था। उपनिषद्, वेद, दर्शन, निरुक्त आदि के साथ-साथ आपने आलोचनात्मक दृष्टि से अठारह पुराणों, का विस्तृत अध्ययन किया था।

आर्यसमाज बुलसाला काशी के तत्वावधान में संद्धर्म प्रचारक के पाक्षिक पत्र चौधरी जी के सम्पादन में प्रकाशित हुआ। इस पत्र के बंद हो जाने पर आपने पाखण्ड-खण्डिणी-पताका निकाली। इन पत्रों के माध्यम से चौधरी जी ने पं. कालूराम शास्त्री, पं. अखिलानन्द आदि सनातनी पंडितों द्वारा आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर किये जाने वाले आक्षेपों का सप्रमाण खण्डन किया।

धूपचण्डी, बनारस छावनी में आपने काशी गुरुकुल की स्थापना की और इस संस्था के माध्यम से संस्कृत का शिक्षण कार्य किया। आप शास्त्रार्थ कला में पूर्णनिष्णात् थे। इनके अनेक शास्त्रार्थ पं. अखिलानन्द तथा पं. कालूराम आदि सनातनी पंडितों से हुए थे। जिनमें विपक्षी पंडितों को मुंह की खानी पड़ी थी। उल्लेखनीय शास्त्रार्थ हैं-- 26 मई 1923 को बेतिया (बिहार) शास्त्रार्थ मृतक श्राद्ध विषय पर। मढौरा (सारण) में दि० 1 जुलाई 1924 को 28 मई 1929 को मुंगेर जिले के वरियारपुर ग्राम में विधवा विवाह पर। दरभंगा जिला के रांसड़ा ग्राम में 25 जनवरी 1931 को तथा आरा जिले घबराहट ग्राम में विधवा विवाह पर। बड़हल गंज, (जिला गोरखपुर) में पं. कालूराम शास्त्री से मूर्ति पूजा पर।

पं. जे. पी. चौधरी ने विभिन्न खण्डनात्मक ग्रन्थ लिखे हैं। इसके अतिरिक्त आपने वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि तथा संस्कृत शिक्षण पर भी ग्रन्थ रचना की हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है –

1. अवतार वाद मीमांसा (पं. कालूराम शास्त्री लिखित अवतार मीमांसा का खण्डन),
2. पुराण पर्यालोचन,
3. पौराणिक तीर्थ मीमांसक,
4. मूर्ति-पूजा प्रश्नोत्तरी,
5. विधवा विवाह प्रश्नोत्तरी,
6. गरुड़ पुराणोक्त वा श्राद्ध वेद विरुद्ध हैं,
7. गणेश महादेव के पुत्र नहीं हैं,
8. सनातन धर्मरहस्य,
9. शुद्धि प्रश्नोत्तरी,
10. वैदिक वर्णव्यवस्था,
11. ऋषि दयानन्द का सत्यस्वरूप,
12. वेद और पशु यज्ञ,
13. यज्ञोपवीत शंका समाधान,
14. अछूतों का मंदिर प्रवेश सनातन धर्मानुकुल है,
15. महाभारत की रहस्यमय कथायें,
16. क्या अहिल्या पत्थर की बनी थी ? क्या हनुमान जी वानर थे ?
17. वैदिक धर्म शिक्षा,
18. सरल संस्कृत प्रवेशिका—दो भाग,

अन्य ग्रन्थ महाराणा प्रताप, अजय तारा, विश्राम बाग।

—डॉ. भवानीलाल भारतीय

(आर्यसन्देश, 6-5-90)

डा. दुःखन राम

भारी शोक के साथ यह दुःखद समाचार दिया जा रहा है कि देश के विख्यात् मनीषी विद्वान, नेत्र-चिकित्सक, शिक्षाविद् और आर्यनेता डा० दुःखनराम का निधन हो गया है। आपके निधन से आर्यजगत् का एक जाज्वल्यमान नक्षत्र लुप्त हो गया है। जिसकी पूर्ति होना असम्भव है। आपके निधन का समाचार सुनते ही समस्त आर्यजगत् में शोक छा गया।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा, अन्य प्रांतीय सभाओं तथा देश की प्रमुख आर्य समाजों, शिक्षण संस्थाओं में शोकसभाएं में आयोजित कर डा० दुःखनराम द्वारा राष्ट्र तथा आर्यसमाज के लिए की गयीं महान-सेवाओं को स्मरण किया गया, तथा उन्हें अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि दी गयीं।

डा० दुःखनराम का जन्म 90 वर्ष पूर्व बिहार के सासाराम शहर में हुआ था। डा० साहब में प्राचीन भारतीय संस्कृति के साथ-साथ आधुनिक जगत् को चकाचौंध करने वाली प्रखर वैज्ञानिक बुद्धि का अद्भुत सामंजस्य था। अपनी शैक्षणिक योग्यता के साथ वैज्ञानिक प्रतिभा के कारण ही डा० साहब ने पटना मेडिकल कालेज का प्राचार्य पद, बिहार विश्वविद्यालय पटना का कुलपति पद तथा राज्य विधान सभा के प्रमुख सदस्य रूप में ख्याति प्राप्त की। भारतवर्ष के प्रथम राष्ट्रपति भारतरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद के नेत्र-चिकित्सक बने और चिकित्सा जगत् में की गई महत्वपूर्ण सेवाओं के फलस्वरूप भारत सरकार द्वारा आपको पद्मभूषण से सम्मानित किया गया।

शैक्षणिक, चिकित्सा, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में अमूल्य योगदान के साथ-साथ डा० दुःखनराम की दिनचर्या सचमुच वैदिक मर्यादा के शत-प्रतिशत अनुरूप रही। आप जीवन के प्रारम्भ से अंतिम समय तक वेदों के महत्व के सन्देश को जन-साधारण से लेकर राष्ट्रपति भवन तक पहुँचाने में सफल रहे। बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा के आप वर्षोपर्यन्त प्रधान रहे। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के वरिष्ठ उपप्रधान और प्रधान पदों को सुशोभित कर डा० साहब ने आर्यजगत का लम्बे समय तक मार्गदर्शन किया तथा वैदिक धर्म की अन्तर्जातीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता, सार्वदेशिकता, सार्वभौमिकता एवं शाश्वत स्वरूप का उल्लेखकर विदेशी राजनयिकों को भी वैदिक धर्म के प्रति आकृष्ट किया।

डा० साहब ने जीवन पर्यन्त महर्षि दयानन्द सरस्वती की विचारधारा को अपना कार्यक्षेत्र बनाए रखा। विद्वानों एवं संन्यासियों की सेवा कर अपने आपको धन्य मानते रहे और प्रतिदिन संध्या एवं हवन के द्वारा अपना जीवन यज्ञमय जीवन बनाने में आरुढ़ रहे।

—मूल चन्द्रगुप्त

(आर्यसन्देश, 6-5-90)

देवनागरी का अभ्यास।

जब पाँच पाँच वर्ष के लड़का लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे वर्त्तना इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थसहित कण्ठस्थ करावें, जिनसे सन्तान किसी धूर्त्त के बहकाने में न आवें।

— महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती दिवंगत

आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान, निर्भीक संन्यासी और स्वतंत्रता सैनानी स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज भूतपूर्व संसद सदस्य का मंगलवार 8 मई 1990 को 96 वर्ष की आयु में निधन हो गया है। स्वामी जी महाराज विगत कुछ मास से अस्वस्थ चल रहे थें।

स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने पिछले छः दशकों से भी अधिक समय तक आर्यसमाज और आर्य गुरुकुलों के प्रचार-प्रसार में अपना जीवन अर्पित किया। स्वामी जी महाराज ने आर्यसमाज द्वारा चलाये गये विभिन्न आन्दोलनों हैदराबाद धर्मयुद्ध (1939), पंजाब हिन्दी सत्याग्रह (1957), दिल्ली का गौरक्षा आन्दोलन (1966) आदि में प्रथम पंक्ति में रहकर सफल नेतृत्व किया था।

1961 में जब पंजाबी सूबे की मांग को लेकर मास्टर तारा सिंह ने आमरण अनशन शुरू किया तो स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज ने भाषा के आधार पर बनाये जाने वाले पंजाबी सूबे की मांग के विरोध में आमरण अनशन करने की घोषणा कर दी थी। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के निर्देश पर स्वामी जी महाराज आर्यसमाज दीवान हाल में 16 अगस्त 1961 को प्रातःकाल यजुर्वेद पारायण यज्ञ के पश्चात् आमरण अनशन पर बैठ गये थे। अन्त में मास्टर तारासिंह के अनशन टूट जाने के बाद ही आपने 24 अगस्त को अपना अनशन समाप्त किया था। स्मरणीय है कि अनशन के दिनों में स्वामी जी को मारने के अनेक प्रयत्न किये गये और एक बार तो दीवान हाल पर शक्तिशाली बम्ब भी फैंका गया।

लोकसभा सदस्य—श्री स्वामी जी महाराज 1962 में लोकसभा के लिए निर्वाचित हुए। संसद् में उनकी ओजस्वी वाणी, स्पष्टवादिता और क्रान्तिकारी राष्ट्रीय विचारों को आदरपूर्वक सुना जाता था। आपने संसद् में हिन्दी रक्षा, गौरक्षा मद्य निषेध, गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली आदि विषयों पर सदैव आर्यसमाज का सबल-पक्ष प्रस्तुत किया।

आचार्य भीष्म जी के शिष्य स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज गुरुकुल घरौण्डा के संस्थापक थे और अन्तिम क्षणों तक गुरुकुल में रहकर आर्य पाठविधि के अनुसार वैदिक ज्ञान का प्रकाश फैलाते रहे। भारत सरकार ने उन्हें गत वर्ष स्वतंत्रता सैनानी मानकर सम्मान पेंशन से सम्मानित किया था।

साहित्य—स्वामी जी ने वैदिक सिद्धान्तों पर अनेक छोटी-बड़ी पुस्तकें लिखीं तथा अनेक पुस्तकों का संपादन भी किया। जिनमें मुख्य हैं—संस्था भाष्यम, देवयज्ञ संध्यासुमन भ्रमोच्छेदक, शतायॆव, पुरुषः, नमस्ते प्रदीप, महर्षि दयानन्द का योग, महर्षि दयानन्द और राजनीतिक स्वकथित जीवन चरित्र, महर्षि दयानन्द तथा काशी शास्त्रार्थ।

अन्तिम संस्कार—गुरुकुल घरौण्डा की पवित्र भूमि पर पूर्ण वैदिक रीति से वेदमन्त्रों के बीच बुधवार 9 मई को सायं 3-00 बजे पार्थिव शरीर का अन्तिम संस्कार किया गया।

—मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 20-5-90)

पण्डित के लक्षण।

जिसको आत्मज्ञान, सम्यक् आरम्भ अर्थात् जो निकम्मा आलसी कभी न रहे, सुख-दुख, हानि-लाभ, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति में हर्ष शोक कभी न करे, धर्म ही में नित्य निश्चित रहें जिसके मन को उत्तम उत्तम पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तु आकर्षण न कर सकें वही पण्डित कहाता है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

आर्य जगत् की त्रिवेणी में सरस्वती के समान पवित्र, वैदिक वाङ्मय के विशिष्ट विद्वान, तार्किक शिरोमणि, प्रगल्भ लेखक, स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती का जन्म माघ कृष्णा दशमी सम्वत् 1918 वि० को लुधियाना जिले के जगरांवां नामक ग्राम में मौद्गल्य गोत्रीय ब्राह्मण पं० राम प्रताप के यहाँ हुआ। इनकी माता का नाम हीरादेवी था। पहले इनका नाम नेतराम था, जो बाद में कृपाराम हुआ और सन्यास दीक्षा के बाद दर्शनानन्द कहलाये।

प्रारम्भिक शिक्षा के रूप में इन्होंने अपने पिताजी से फारसी के गुलिस्तां, बोस्तां आदि ग्रंथ तथा व्याकरण सिद्धान्त कौमुदी का अध्ययन किया। ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही इनका विवाह वैशाख कृ० पंचमी सं० 1929 वि० को पार्वती देवी के साथ हो गया। इनके दो पुत्र पं० नृसिंह तथा पं० अमरनाथ हुये।

इनके पिता प्रसिद्ध व्यवसायी एवं ग्राम के धनाढ्य व्यक्ति थे। वे अपने पुत्र को भी निपुर्ण व्यापारी बनाना चाहते थे किन्तु अल्हड़ और मनमौजी प्रकृति के कृपाराम ने व्यापार में रुचि न ली, अपितु स्वतंत्र विचारक होने तथा महर्षि दयानन्द के व्याख्यानों के कारण वे सांसारिक विषयों के प्रति अनासक्त हो गये। ये संसार सरोवर में रहते हुए भी शतदल कमल के समान संदेह होते हुये भी विदेह से प्रफुल्लित रहे। इनकी स्वतंत्र एवं आत्मकेन्द्रित प्रकृति के कारण इन्हें आजाद एवं नित्यानन्द भी कहते थे।

प्रथम गृह त्याग एवं पुनः आगमन

कृपाराम ने विरक्त होकर गृहत्याग कर दिया और सन्यस्त होकर जम्मू कश्मीर के दुर्गम स्थानों का भ्रमण किया। वे नवीन वेदान्त के विचारों से प्रभावित थे, किन्तु नवीन वेदान्त की आलोचना में स्वामी दयानन्द की युक्तियों और तर्कों को सुनकर वे बड़े प्रभावित हुये और निरन्तर स्वामी दयानन्द के व्याख्यानों में उपस्थित रहकर 37 व्याख्यान सुने। लगभग 1879 ई० के आस पास पंजाब के विभिन्न नगरों का भ्रमण करते हुये इन्होंने स्वामी दयानन्द के व्याख्यान सुने, हरिद्वार, कुल्लू, कश्मीर आदि स्थानों का भ्रमण किया। तथा 'जंग-ए-आजादी' नामक उर्दू पुस्तक लिखी। इन्हीं दिनों दीनानगर (पंजाब) में जब ये एक ईसाई पादरी से शास्त्रार्थ कर रहे थे, इनके चाचा वहाँ पहुँचे और घर चलने को कहा। अधिक आग्रह करने पर निम्न शर्तों के साथ उन्होंने घर चलना स्वीकार किया—

1—गेरुए वस्त्र नहीं ऊतारूंगा ।
2—घर में नहीं बैठक में रहूंगा ।
3—स्वामी दयानन्द के समस्त ग्रंथ मंगाने होंगे ।

काशीवास एवं प्रेस स्थापना—

इनके पितामह पं० दौलतराम के दिवगंत होने पर इन्हें उनके (पं. दौलतराम) चलाये अन्नक्षेत्र की व्यवस्था को कहा गया। इसे इन्होंने 'प्रेस स्थापना व पत्र प्रकाशन' की शर्त के साथ स्वीकार किया और 10 नवम्बर 1898 को "तिमिर नाशक'' प्रेस की स्थापना की और तिमिरनाशक पत्र प्रारम्भ किया, साथ ही विभिन्न बहुमूल्य शास्त्रग्रंथों को भी मुद्रित एवं प्रकाशित कर निर्धन छात्रों को सुलभ बनाया।

स्वामी मनीषानन्द जी का शिष्यत्व

इनकी तर्क शक्ति बड़ी प्रबल थी किन्तु गुरुमुख से विद्याध्ययन नहीं कर पाये थे, जिसकी इन्हें प्रबल आकांक्षा थी। एक बार काशी के धुरन्धर विद्वान पं० हरिनाथ (स्वामी मनीषानन्द) के एक शिष्य से उत्तर प्रत्युत्तर करते हुए कृपाराम को देखकर पंडित जी बड़े मुग्ध हुए तथा पढ़ने की आकांक्षा देखकर उन्होंने इन्हें पढ़ाना स्वीकार किया और उनसे कृपाराम ने साढ़े चार दर्शनों (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग तथा आधा वेदान्त) का अध्ययन किया।

संस्कृत पाठशाला की स्थापना एवं निर्धन छात्रों की सहायता

उस समय कट्टरपन्थी पंडितों के कारण आर्यसमाजी एवं ब्राह्मणेतर छात्रों को अध्ययनार्थ अत्यन्त कठिनाई पड़ती थी। अत: उन्होंने स्वयं विद्याध्ययन करने के साथ-साथ एक संस्कृत पाठशाला की भी स्थापना की, जिसमें लब्धप्रतिष्ठ पंडित काशीनाथ शास्त्री अध्यापन कार्य करते थे। इसके अतिरिक्त कृपाराम जी ने अनेक आर्य छात्रों को अन्न, वस्त्र आदि की भी व्यवस्था की। वे निर्धन छात्रों को संस्कृत ग्रन्थ अल्पमूल्य में उपलब्ध कराने तथा कई बार तो मंहगी पुस्तकें नि:शुल्क वितरित करने में भी बड़ी रुचि लेते थे।

संन्यास दीक्षा

पं० कृपाराम सन् 1901 की बसन्त ऋतु में राजघाट, गंगातट (जिला बुलन्दशहर) पर स्वामी अनुभवानन्द जी से विधिवत् संन्यास दीक्षा ग्रहण करके, "पाणिपात्री दिगम्बर" बन परमहंस परिव्राजक के रूप में प्रविष्ट होकर स्वामी दर्शनानन्द हो गये।

संन्यास दीक्षा के बाद स्वामी दर्शनानन्द का कार्यक्षेत्र अति विस्तृत हो गया और सम्पूर्ण भारत में भ्रमण कर वैदिक वैजयन्ती फहराने लगे। स्वामी जी सर्वतंत्र उपदेशक थे।

अद्वितीय तार्किक होने के कारण स्वामी दर्शनानन्द जी के समक्ष शास्त्रार्थ में कोई नहीं टिक पाता था। इन्होंने अनेक शास्त्रार्थ किये जिनमें प्रमुख हैं —

1. काशी के विद्वान महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री के ऋषि दयानन्द द्वारा देव शब्दों को 'विद्वान' अर्थ में प्रयुक्त करना अनुचित बताने पर अपने गुरू की सहायता से 'देव' शब्द को 'विद्वान' अर्थ में 150 स्थान पर सप्रमाण उद्धृत कर विजय प्राप्त की।
2. आगरा में एक यूरोपियन जेस फारनेन की मध्यस्थता में "वेद और कुरान में कौन सी पुस्तक इल्हामी है ?" विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। जिसमें स्वामी जी विजयी रहे।
3. सन् 1904 में प्रसिद्ध पादरी ज्वाला सिंह को शास्त्रार्थ में पराजित किया।
4. गु० म०वि० ज्वालापुर के आचार्य गंगादत्त जी, पं० भीमसेन शर्मा (आगरा) तथा पं० तुलसीराम की उपस्थिति में 19, 20, 21 फरवरी 1901 को पं० भीमसेन शर्मा (इटावा) के साथ शास्त्रार्थ कर उन्हें निरुत्तर किया।
5. ताजपुर, जिला बिजनौर के जमींदार के नास्तिक दीवान की 14 युक्तियों का खण्डन करके ईश्वर सिद्धि पर सात प्रबल युक्तियाँ दीं, जिनका प्रतिपक्षी से खण्डन न हो पाया।
6. स्वामी तथा पं० भीमसेन शर्मा, आगरा का शास्त्रार्थ 'प्रायश्चित' विषय पर आर्यसमाज बिजनौर के तत्वावधान में पं० भीमसेन शर्मा (इटावा) व पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र (मुरादाबाद) के साथ हुआ।
7. व्याकरण केसरी पं बिहारीलाल के साथ 'श्राद्ध' विषय पर 1962 वि. में शास्त्रार्थ हुआ।
8. सन् 1903 ई. में "वेद अथवा कुरान ईश्वरोक्त" विषय पर शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें आर्यसमाज पक्ष का नेतृत्व स्वामी जी ने किया।
9. सनातन धर्मी पं. जगत् नारायण को पेशावर में स्वामी ने मैदान छोड़ने पर विवश कर दिया।
10. गुरुकुल महाविद्यालय में 8 अप्रैल 1912 को स्वामी जी का सबसे प्रसिद्ध शास्त्रार्थ "वृक्षों में जीव" विषय पर पं. गणपति शर्मा के साथ हुआ।
11. जून 1912 में 'ईश्वर सृष्टिकर्ता है' विषय पर जैन पं. गोपालदास बरैया के साथ स्वामी का शास्त्रार्थ हुआ। स्वामी जी की विजय के साथ ही पं. दुर्गादत्त शास्त्री व पं. शम्भुदयाल ने जैनमत त्याग कर आर्यत्व स्वीकार किया।

स्वामी जी ने अनेक पत्रों का प्रकाशन किया। जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न है—

1.	तिमिर नाशक (साप्ताहिक)	काशी	1889 ई.
2.	वेद प्रचारक (मासिक)	मुरादाबाद	1894 ई.
3.	भारत उद्धार (साप्ताहिक)	जगरावां	
4.	वैदिक धर्म (उर्दू साप्ताहिक)	मुरादाबाद	1897 ई.
5.	वैदिक धर्म (साप्ताहिक)	दिल्ली	1889 ई.
6.	वैदिक मैगजीन (मासिक)	दिल्ली	1899 ई.
7.	तालिबे इल्म (साप्ताहिक)	आगरा	1900 ई.
8.	गुरुकुल समाचार	बदायूं	
9.	आर्य सिद्धान्त (मासिक)	बदायूं	1903 ई.
10.	मुदाहिसा (साप्ताहिक)	बदायूं	1903 ई.
11.	ऋणि दयानन्द (मासिक)	लाहौर	1908 ई.
22.	वैदिक फिलासफी (मासिक)	रावलपिण्डी	1909 ई.

साहित्यकार

स्वामी दर्शनानन्द जी पत्रकार व उपदेशक के साथ-साथ कवि भी थे। उनका हृदय अत्यन्त कोमल एवं भव्य भावनाओं से भरपूर था। "जंग-ए-आजादी" उनकी प्रथम काव्यकृति है, जो उर्दू पद्य में प्रकाशित हुई है। इसमें उन्होंने अपना उपनाम "आजाद नित्यानन्द" और "कृपाराम" भी लिखा है।

स्वामी जी कवि ही नहीं, अपितु सफल कहानीकार एवं उपन्यासकार भी थे। इस प्रकार की आपकी रचनाओं में—

सत्यव्रती महानन्द, धर्मवीर, क्षमा, चन्द्रोदय, चाण्डाल चौकड़ी, विचित्र ब्रह्मचारी, कथा पच्चीसी आदि हैं।

इसके अतिरिक्त उन्होंने वेदान्त दर्शन एवं न्याय आदि पर अनेक भाष्य लिखे। उपनिषद्, मनुस्मृति, श्रीमद्भगवद्गीता आदि पर भी स्वामी जी ने टीकायें लिखीं। अपने जीवन काल में स्वामी दर्शनानन्द जी ने लगभग 250 छोटे बड़े ट्रैक्ट भी लिखे जो दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह नाम से विभिन्न प्रकाशकों ने प्रकाशित किये।

साथ ही 'मूर्खता', 'नौजवानो उठो', 'उन्नीसवीं सदी का सच्चा बलिदान', अकायद इस्लाम पर अकली नजर' (आठ भाग), 'हम निर्बल क्यों हैं ? 'धर्मसभा से 64 प्रश्न', 'बे-समझों के स्वामी दयानन्द पर झूठे इल्जाम', 'अंग्रेजी तालीम याफ्ताओं में वैदिक धर्म के प्रचार का आसान तरीका' 'आर्य धर्म सभा', 'क्या संस्कृत मृत भाषा है ?', 'भारत का दुर्भाग्य', 'अकल अजीर्ण', 'निःशुल्क शिक्षा', 'आत्मिक बल', 'ईश्वर विचार', 'मोंदू जाट और पादरी साहब का शास्त्रार्थ', 'गुरुकुल, अकाल मृत्यु मीमांसा',

'श्राद्ध व्यवस्था', 'आर्यसमाज और सनातन धर्म सभा के बीच प्रश्नोत्तर', 'हम रूहानी डाक्टर हैं', 'जीवात्मा द्रव्य है या गुण ?', 'धर्म शिक्षा', 'पाप और पुण्य', 'देह ब्रह्माण्ड का नक्शा है', 'स्वराज्य और शान्ति', 'पुनर्जन्मवाद', आदि स्वामी जी के मुख्य ट्रैक्ट हैं जो भारतवर्ष में सभी धर्मों के मानने वालों में सम्मान्य हैं। इस्लाम धर्म समीक्षा, जैन मत समीक्षा एवं ईसाई मत समीक्षा के संदर्भ में भी इन्होंने लगभग 35-40 ट्रैक्ट लिखे।

गुरुकुलों की स्थापना

स्वामी दर्शनानन्द जी के जीवन काल की सबसे अनुपम देन गुरुकुलों की स्थापना करना है। इन्होंने सर्वप्रथम सिकन्दराबाद में 1898 ई० में गुरुकुल की स्थापना की। इस गुरुकुल की स्थापना के लिए उन्हें पं. गंगा सहाय जी से भूमि प्राप्त हुई। पं. मुरारीलाल शर्मा के रूप में गुरुकुल सिकन्दराबाद को एक महान् सहायक प्राप्त हुआ।

इनके द्वारा 1903 ई० में गुरुकुल बदायूं की स्थापना की गई। गुरुकुल बदायूं की स्थापना के दो वर्ष बाद स्वामी जी ने 1905 में मुजफ्फरनगर जिले के विरालसी गांव में एक अन्य गुरुकुल की स्थापना की।

महाविद्यालय ज्वालापुर की स्थापना

स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा स्थापित गुरुकुलों में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त गुरुकुल की स्थापना से दो वर्ष पश्चात् 1907 ई० में हुई। बाबू सीताराम जी की भूमि पर इस गुरुकुल की आधारशिला रखी गई। आचार्य गंगादत्त शास्त्री, पं. भीमसेन शर्मा (आगरा), पं. पद्मसिंह शर्मा, पं. दिलीप दत्त उपाध्याय, आचार्य हरिदत्त शास्त्री जैसे संस्कृत के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों ने इस गुरुकुल में अध्यापन कार्य किया।

इसके अतिरिक्त रावलपिण्डी के निकट गुरुकुल पोठोहार की स्थापना भी स्वामी जी ने ही की थी।

गुरुकुल प्रणाली के प्रथम प्रवर्त्तक एवं प्रचारक के रूप में स्वामी दर्शनानन्द जी चिरस्मरणीय रहेगें।

महाप्रयाण

वैदिक धर्म प्रचार हेतु उत्तर भारत के विस्तृत भ्रमण, अनवरत ग्रन्थ-लेखन, शास्त्रार्थ आदि कार्यों ने स्वामी जी की बज्रकाया को जीर्ण-शीर्ण बना दिया। स्वामी जी प्राय: अजमेर आकर अना-सागर स्थित दयानन्द साधु आश्रम में रहते थे। एक बार अस्वस्थ होने पर डा. भट्टाचार्य ने उनकी चिकित्सा आरम्भ की। उस समय शय्या पर ही उन्होंने 'स्याद्वाद समीक्षा' जैन सिद्धान्त के खण्डन में एक आलोचनात्मक ट्रैक्ट लिखा।

स्वामी जी भाग्यवाद में दृढ़ विश्वास रखते थे इसलिए अस्वस्थ होने पर भी उन्होंने औषधि लेने से इन्कार कर दिया। आचार्य गंगादत्त जी के अत्यधिक आग्रह

के फलस्वरूप केवल 7 दिन तक औषधि लेना स्वीकार किया तथा आठवें दिन औषधि बन्द कर दी। अस्वस्थता बढ़ती गई। मृत्यु की ओर अग्रसर उन्हें यदि कोई चिन्ता थी तो ऋषि दयानन्द के मिशन को पूरा करने की थी।

उन्होंने अपने अन्तिम उद्‌गार इस प्रकार व्यक्त किये—'ऋषि दयानन्द के मैंने 37 व्याख्यान सुने और 37 वर्ष ही मैंने धर्म प्रचार का कार्य भी किया, फिर भी अफसोस यही है कि स्वामी जी के मिशन को पूरा नहीं कर सका'। और अन्त में कहा—'अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले।, और 11 मई 1913 ई० को स्वामी दर्शनानन्द जी इस नश्वर पार्थिव शरीर का परित्याग कर ब्रह्मलीन हो गये।

आर्यसमाज में ऐसा उद्‌भट विद्वान, लेखक, शास्त्रपटु, निःस्वार्थ आर्य सिद्धान्तों का सेवक, वैदिक धर्म के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने वाला, ऋषि, दयानन्द का भक्त शायद ही कोई हुआ हो। उन्होंने आर्यत्व के प्रचारार्थ विशाल साहित्य का सृजन किया, जिनमें आर्यसमाज के हित की बातें कूट-कूट कर भरी हुई हैं। स्वामी जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करना प्रत्येक भारतीय का परम पुनीत कर्त्तव्य है और उनके विचारों का प्रचार-प्रसार तथा उनके गुरुकुलों का सफल संचालन ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाँञ्जलि होगी। स्वामी जी के निधन पर पं. नरदेव शास्त्री ने कहा था कि स्वामी दयानन्द के पश्चात् आर्य जगत् में जितना प्रचार हुआ है, उसके आधे के ऊपर प्रचार का श्रेय स्वामी दर्शनानन्द जी को ही है। कितने प्रेस खोले, कितने समाचार पत्र निकाले, कितने ट्रैक्ट लिखे, कितने व्याख्यान दिये कितने शास्त्रार्थ किये, कितने सहस्र मीलों घूमें। स्वामी दर्शनानन्द जी वास्तव में उत्साह, जागृति और स्फूर्ति की ज्वलन्त मूर्ति थे।

उनकी मृत्यु से समाज में शोक छा गया। यहाँ तक कि उनके देहावसान पर उनके विरोधी व्यक्तियों एवं पत्रों ने भी शोक संदेश प्रकाशित किये। रुड़की के पादरी तथा प्रसिद्ध ईसाई विद्वान् ज्वालासिंह ने भी उनके स्वर्गवासी होने पर शोक-चिन्ह के रूप में कई दिनों तक अपने हाथ में काली पट्टी बांधी।

ऐसे स्वामी जी को शत-शत नमन्।

—डा. धर्मेन्द्र वसु

(आर्यसन्देश, 27-5-90)

मुंशी समर्थदान

स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित वैदिक यंत्रालय के प्रबन्धकर्ता मुन्शी समर्थदान राजस्थान के सीकर जिले के ग्राम नेठवा के निवासी चारण मंगलदान के पुत्र थे। सिंढ़ायच गोत्र के चारण थे। इनका जन्म 1858 ई. में हुआ था। समर्थदान बहुभाषा विद् थे। उर्दू, फारसी, हिन्दी संस्कृत तथा स्वल्प अंग्रेजी भी जानते थे। स्वामी दयानन्द से इनका सम्पर्क 1935 वि० में हुआ। जब स्वामीजी ने वेदभाष्य लेखन तथा प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया तो उन्हें समर्थदान की सेवाओं की आवश्यकता हुई। प्रारम्भ में वेदभाष्य बम्बई के निर्णय सागर प्रेम में छपता था; अतः मुन्शी समर्थदान को इसकी व्यवस्था देखने बम्बई भेजा गया। 1879 ई० में मुन्शीजी बम्बई पहुंच गये और वहां वेदभाष्य के मुद्रण का कार्य देखने लगे। कुछ समय पश्चात् स्वामी जी ने वैदिक यंत्रालय के नाम से काशी में निजी प्रेस की स्थापना की, तो मुन्शीजी वेदभाष्य मुद्रण की व्यवस्था से मुक्त हो गये। उन्होंने बम्बई में लगभग एक वर्ष तक रह कर वेदभाष्य का काम देखा था। उनके सरल और निष्कपट व्यवहार से स्वामीजी अत्यन्त प्रसन्न हुये थे और उन्होंने 4 मई, 1881 को एक प्रशस्ति-पत्र लिखकर मुन्शीजी को दिया, जिसमें इन्हें 'धार्मिक, निष्कपटी, सच्चा, उद्योगी, परिश्रमी, चतुर, सभ्य, सुशील, श्रेष्ठ और चाल चलन का बहुत अच्छा, जैसे विशेषणों से अलंकृत किया है।

2 जुलाई, 1882 को मुन्शी समर्थदान को वैदिक यंत्रालय का प्रबन्धक नियुक्त किया गया। इस समय यंत्रालय प्रयाग में था। मुन्शीजी की देखरेख में स्वामी जी के लगभग सभी ग्रन्थ छपे। स्वामीजी का मुन्शीजी से विस्तृत पत्र-व्यवहार होता था। इसमें वे यंत्रालय तथा स्वग्रन्थों के मुद्रण सम्बन्धी निर्देश तो मुन्शीजी देते ही थे, स्वयं के कार्यक्रमों तथा विभिन्न स्थानों पर अपने उपदेश कार्य की सफलता आदि का संकेत भी इन पत्रों में मुन्शीजी को देते रहते थे। इससे स्वामीजी का मुन्शीजी के प्रति विश्वास तथा प्रेम का भाव प्रकट होता है। स्वामी जी के परलोक गमन तक मुन्शीजी ही वैदिक यंत्रालय के प्रबन्धकर्ता के पद पर रहे। मार्च 1886 में वे इन कार्य से मुक्त हो गये।

प्रारम्भ में स्वामी दयानन्द को ग्रन्थों के प्रकाशनादि की व्यवस्था के कार्यों में उपयुक्त सहायक व्यक्ति नहीं मिले थे। बम्बई में सर्वप्रथम वेदभाष्य का मुद्रण कार्य उन्होंने हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को सौंपा था और काशी में यंत्रालय स्थापित होने पर

उसके प्रथम प्रबन्धकर्ता मुन्शी बखतावर सिंह बनाये गये थे। आर्थिक मामलों में गोल-माल करने के कारण इन दोनों को ही स्वामीजी ने पृथक कर दिया था। किन्तु मुन्शी समर्थदान के सम्बन्ध में उनका अनुभव कभी निराशाजनक नहीं रहा। वे हिसाब के सच्चे तथा स्वामीजी के मिशन के प्रति निष्ठावान थे। 17 मार्च 1883 को मुन्शीजी के नाम लिखे पत्र में स्वामीजी ने उन्हें 'उत्तम पुरुष' कहा है। सत्यार्थप्रकाश के मुद्रण के समय जब मुन्शीजी अनेक महत्त्वपूर्ण संशोधनीय बातों की ओर स्वामीजी का ध्यान आकृष्ट करते थे तो स्वामीजी उन्हें स्वयं ही यथोचित संशोधन और परिवर्तन करने के लिये लिख देते थे। सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण में जो पाद टिप्पणियां दी गई हैं वे मुन्शी समर्थदान द्वारा ही लिखी गई हैं।

वैदिक यंत्रालय की सेवा से मुक्त होकर मुन्शीजी अजमेर आ गये और 1945 वि० में इन्होंने राजस्थान समाचार नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। राजस्थान के कई देशी राज्यों के नरेश मुन्शीजी का बड़ा आदर करते थे और अनेक मामलों में इनसे परामर्श भी लेते थे। 1907 ई० में इन्हें अपने पत्र का प्रकाशन आर्थिक कठिनाईयों से बन्द करना पड़ा। मुन्शी समर्थदान ने आर्यसमाज परिचय तथा धर्मरक्षा नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं। जीवन के अन्तिक वर्षों में ये वैद्यक से जीविका निर्वाह करने लगे थे। 17 जून, 1914 को इनका निधन हो गया।

—प्रो० भवानी लाल भारतीय
(आर्यसन्देश, 10-6-90)

वेद-विद्या का दान सर्वश्रेष्ठ।

संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृत आदि इन सब दानों से वेदविद्या का दान अतिश्रेष्ठ है। इसलिये जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में किया करे। जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता। वही देश सौभाग्यवान होता है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

पं. संतराम बी. ए.

श्री संतराम बी-ए. का अपने जीवन का एकमात्र ध्येय था कि वे इस समाज से जाति-पांति के भेद-भाव को पूरी तरह मिटा दें। उन्होंने इस धारा पर आकर, मानव-मात्र के कल्याणार्थ अनेक कार्य किए पर उनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था —

वास्तव में जन्मना जाति न मानने का जो विचार महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रारम्भ किया था, सामाजिक ऊंच-नीच के भेद-भाव को मिटाने का तथा क्षेत्रीयता एवं प्रान्तीयता के भेद-भाव को मिटाने का एक मात्र संवाहक साधन हो सकता है। हमारे राष्ट्रीय नेता विश्व नागरिकता की बातें उठाते तो हैं परन्तु वे इस पर आचरण कहाँ कर पाते हैं। वे तो राष्ट्र को भी हिन्दुस्तानी, पंजाबी, राजस्थानी, मराठी तथा मद्रासी में बांटते रहते हैं। यह प्रान्तीयता का विषधर हमें तब तक डसता रहेगा, जब तक हम उस देवदयानन्द की मान्यताओं को अपने जीवन में नहीं उतारेंगे।

सन्तराम बी-ए. के इस दिशा में किए गये प्रयास स्पृहणीय हैं। उन्होंने अपने उद्देश्य के मार्ग में बाधक बड़े से बड़े आदमी से भी सम्बन्ध-विच्छेद कर लिए थे। उन्होंने न भाई परमानन्द की परवाह की थी और न ही लाला लाजपत राय की। उन्होने महात्मा गांधी तक के विचारों का विरोध किया था।

श्री सन्तराम जी इस विषय में कितने दुराग्रही थे यह इस बात से पता लगता है। 1918 में लाहौर के पास पट्टी में उन्होंने एक कृषि फार्म चलाया वहाँ पर सवर्णों के साथ, हरिजनों, मुसलमानों और सिक्खों को भी काम पर लगाया। वे रोटी बनाने का काम सामूहिक रूप से सभी स्त्रियों को देते थे। इससे सवर्ण तो नाराज हुए ही, सिख और मुसलमान भी नाराज हुए। पर उन्होंने परवाह न की। कुछ सवर्ण काम छोड़कर चले गये। पर वे अपने सिद्धान्तों पर अटल रहे। उनके फार्म पर सभी को समान रूप से कुँए पर चढ़ने का अधिकार था।

1930 के आस पास आर्यसमाजों के उत्सवों पर एक जाति तोड़ों सम्मेलन भी हुआ करता था। महात्मा गांधी जन्मना जाति मानते थे। वह अलग बात है कि बाद में उनके बेटे ने अन्तर्जातीय विवाह किया।

सन्तराम जी हिन्दी और साहित्य की भी समान रूप से सेवा की 1941 में उन्होंने पंजाब से 'उषा' तथा 1933 में 'युगान्तर' नामक पत्रिकाएँ शुरू कीं। 1952 में होशियारपुर की 'विश्वज्योति' पत्रिका के सह सम्पादक बनें। उन्होंने सामयिक ज्वलन्त प्रश्नों पर अनेक लेख लिखें।

पं० सन्तराम जी की स्मृति में हमारी प्रणामांजलि

—डा० धर्मपाल

(आर्यसन्देश 17-6-90)

कुंवर चाँदकरण शारदा

श्री शारदा जी का जन्म 26 जून सन् 1888 को राजस्थान के अजमेर नामक नगर के एक प्रख्यात माहेश्वरी वैश्य परिवार में हुआ था। आपके पारिवारिकजन मूलत: डीडवाना के निवासी थे, जो मेड़ता के निकट आलानियावास नामक ग्राम में रहने लगे थे। वहाँ से ही आपके पितामह रामरतन शारदा अजमेर जाकर वहाँ के मदार गेट के भीतर वाले 'सराय गणपतपुरा' नामक मोहल्ले में जाकर स्थाई रूप से बस गए थे। आपके पिता आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित 'परोपकारिणी सभा' और उसके 'वैदिक प्रेस' के प्रमुख अधिकारी थे। अत: श्री चाँदकरण शारदा उनके पास आने वाली पत्र-पत्रिकाओं को पढ़कर ही साहित्य की ओर अग्रसर हुए थे। जब आप सन् 1906 में मैट्रिक में पढ़ते थे तब अपने अन्य सहपाठी छात्रों के सहयोग से आपने एक 'वाचनालय' की स्थापना भी की थी। प्रयाग विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने गवर्नमेंट कालेज अजमेर से सन् 1910 में बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इस परीक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने के कारण आपको कालेज की ओर से 'कर्नल पिन्हें स्वर्ण पदक' भी प्रदान किया गया था।

क्योंकि उन दिनों अजमेर में स्नातकोत्तर स्तर की अध्ययन की कोई व्यवस्था नहीं थी अत: आपने आगरा आकर एम० ए० की कक्षाओं में प्रवेश ले लिया। आप ने इस अध्ययन-काल में अपने नगर की 'आर्यमित्र सभा' नामक सामाजिक संस्था की सदस्यता स्वीकार कर ली और उसके माध्यम से आपके मानस में 'वैदिक धर्म' और 'आर्य संस्कृति' के प्रति अनन्य-अनुराग उत्पन्न हो गया। पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण आपने इस संस्था के माध्यम से नगर के अनेक युवकों को आर्यसमाज के सुधार वादी आन्दोलन की ओर सहज ही आकर्षित कर लिया था। एम०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आप वहाँ से ही एल-एल० बी० की परीक्षा देकर अजमेर चले गए और वकालत को अपने व्यवसाय के रूप में अपना लिया।

वकालत करते हुए आपने समाज-सेवा के विभिन्न क्षेत्रों में भी कार्य करना प्रारम्भ कर दिया और थोड़े ही समय में नगर में आपका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान बन गया। सन् 1910 में जब प्रयाग में सर विलियम वेडर बर्न की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का पच्चीसवाँ अधिवेशन हुआ था तब आप उसमें उत्साहपूर्वक सम्मिलित हुए थे। इसके उपरान्त आप न केवल अजमेर, मध्य-भारत और राजस्थान की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के कई वर्ष तक अध्यक्ष रहे, प्रत्युत

अमृतसर, दिल्ली, बम्बई तथा कलकत्ता आदि नगरों में हुए कांग्रेस के अनेक वार्षिक अधिवेशनों में भी आपने सक्रिय रूप से भाग लिया था। सन् 1921-22 के असहयोग आन्दोलन में भी आप पीछे नहीं रहे और अपनी अच्छी चलती हुई 'वकालत' को छोड़कर 6 मास का कारावास भी भोगा। स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार और प्रचार की दिशा में भी आपका अनन्य योगदान रहा था। प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहने के अतिरिक्त आप कई वर्ष तक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के भी सदस्य रहे थे। श्रीमती एनी बेसेण्ट के द्वारा संचालित 'होमरूल लीग' की विभिन्न प्रवृत्तियों में भी आपका सक्रिय सहयोग रहा था।

आपका विवाह आर्यसमाज के प्रख्यात नेता शिक्षा-शास्त्री और दार्शनिक मास्टर आत्माराम अमृतसरी की सुशिक्षित पुत्री श्रीमती सुखदादेवी से 27 जून सन् 1917 को हुआ था। इस परिवार के सम्पर्क ने श्री शारदा के व्यक्तित्व में और भी प्रखरता उत्पन्न कर दी तथा आपका कार्य-क्षेत्र कांग्रेस के साथ-साथ आर्यसमाज का सुधारवादी आन्दोलन भी हो गया। आपकी सहधर्मिणी श्रीमती सुखदा देवी ने जहाँ आपकी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में सच्चे सहयोगी के रूप में भाग लिया वहाँ आर्य-समाज के द्वारा प्रवर्तित अनेक आन्दोलन में वे पीछे नहीं रहीं। आप महात्मा गांधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन से इतने प्रभावित हो गए थे कि आपने विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त अपनी सभी डिग्रियाँ यह कहकर विश्वविद्यालय को लौटा दी थीं कि "इन गुलामी के चिन्हों को अपने नाम के साथ जोड़े रखना मैं राष्ट्रीय स्वाभिमान के प्रतिकूल समझता हूँ।" आपका यह पत्र श्री मोतीलाल नेहरू के संरक्षण में प्रयाग से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी के दैनिक पत्र 'दि इन्डिपेण्डेण्ट' के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित हुआ था। आपने जहाँ कांग्रेस के माध्यम से राजस्थान के सभी देशी राज्यों में अभूतपूर्व जागृति की थी वहाँ आर्यसमाज के सुधारवादी आन्दोलन में भी आपका अनन्य योगदान रहा था। इस सन्दर्भ में आपका देश के अनेक उच्च-कोटि के नेताओं से अत्यन्त निकट का सम्पर्क हो गया था। देशी राज्यों में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने के पावन उद्देश्य से आपने सर्वश्री गणेशशंकर विद्यार्थी, विजय सिंह 'पथिक' और जमनालाल बजाज के सहयोग से दिल्ली के चाँदनी चौक बाजार के 'मारवाडी पुस्तकालय' में राजपूताना मध्यभारत सभा' की स्थापना की थी, जिसके माध्यम से आपने देशी राज्यों की प्रजा की राजनीतिक आशाओं-आकाँक्षाओं की पूर्ति करने का साहसिक अभियान चलाया था।

जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू के प्रयास से 'अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद' की स्थापना हुई तो आपको उसकी शाखा 'मारवाड़ प्रजा परिषद्' का अध्यक्ष बनाया गया। आपके साथ मन्त्री के रूप में लोकनायक श्री जयनारायण व्यास ने कार्य किया था। जब सन् 1933 में 'दयानन्द निर्वाण अर्ध शताब्दी' का उत्सव अजमेर में मनाया गया था तब उस अवसर पर आयोजित 'प्रवासी सम्मेलन' की अध्यक्षता आपने ही की थी। 'परोपकारिणी सभा' की अनेक प्रवृत्तियों से सम्बद्ध होने

के साथ-साथ आप 'आर्य प्रतिनिधि सभा' राजस्थान व मालवा' तथा 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' से भी यावज्जीवन जुड़े रहे और उनके विभिन्न पदों पर रहकर समाज की सेवा की। हैदराबाद (दक्षिण) में वहाँ के निजाम द्वारा आर्यसमाज के कार्यों में डाली जाने वाली बाधाओं के निराकरण के लिए जब आर्यसमाज की ओर से सन् 1939 में 'आर्य सत्याग्रह' प्रारम्भ किया गया तब आप उसके 'द्वितीय सर्वाधिकारी' बनाए गए थे, । इस सत्याग्रह के 'प्रथम सर्वाधिकारी' आर्यजगत् के प्रख्यात् नेता महात्मा नारायण स्वामी थे । 'सत्यार्थ प्रकाश' के 'चौदहवें समुल्लास' पर प्रतिबन्ध लगाने के विरोध में जब सिन्ध में सत्याग्रह करने की घोषणा हुई तब भी आप महात्मा, नारायण स्वामी, राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री, लाला खुशहालचन्द्र 'खुरसन्द' (बाद में आनन्द स्वामी) तथा स्वामी अभेदानन्द आदि आर्य नेताओं के साथ करांची गए थे। इसी प्रकार जब पंजाब में राष्ट्रभाषा हिन्दी को प्रतिष्ठित कराने की दिशा में आर्यसमाज की ओर से अभियान चलाया गया तब भी आप पीछे नहीं रहे थे। इसके अतिरिक्त आर्यसमाज की विभिन्न संस्थाओं के संचालन तथा संवर्धन मे भी आपका प्रशंसनीय सहयोग सदैव बना रहता था। जब महर्षि दयानन्द सरस्वती की जन्मभूमि टंकारा' में एक 'स्मारक ट्रस्ट का निर्माण सन् 1951 में किया गया तब आप उसके भी मन्त्री चुने गए थे । इस सम्बन्ध में ट्रस्ट' की आर्थिक स्थिति मजबूत करने के लिए आप धन-संग्रहार्थ दक्षिण अफ्रीका भी गए थे। अपने जीवन के उत्तरार्ध में आपने संन्यास ग्रहण करके अपना नाम 'स्वामी चन्द्रानन्द' रख लिया था।

आप जहां कुशल संगठन, अद्भुत समाज-सुधारक और दूरदर्शी नेता थे वहाँ आपने अपनी लेखनी के द्वारा भी साहित्य और समाज की अभिनन्दनीय सेवा की थी। आर्यजगत् की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रेरणाप्रद लेखादि लिखने के अतिरिक्त आपने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार में भी अत्यन्त उल्लेखनीय कार्य किया था। आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से संचालित हिन्दी परीक्षाओं के भी लगभग 20 वर्ष तक अजमेर केन्द्र के संचालक रहे थे। आपकी यह धारणा थी कि इस समय तो सबसे पहले जनता के सामने दो ही बातें रखनी चाहिए—

एक तो 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' का सारे देश में प्रचार हो और दूसरे वह कचहरियों और शासकीय कार्यों की भाषा होकर शिक्षा माध्यम भी बने। आपने यावज्जीवन हिन्दी की सेवा के लिए अथक प्रयास किया और अपनी लेखनी स अनेक ग्रंथरत्न प्रस्तुत किए। आपके द्वारा लिखित ग्रंथों में 'कालेज होस्टल', आर्यसमाज और असहयोग', 'माडरेटों की पोल', 'दलितोद्धार', 'शुद्धि', 'शुद्धिचन्द्रोदय', विधवा विवाह करो', शारदा एक्ट', 'हिन्दू संगठन', 'सन्ध्या', 'सृष्टि की कहानी', तथा 'नोआखाली का भीषण हत्याकाण्ड' आदि उल्लेख्य हैं। आप अपनी 'आत्म कथा' तथा 'दक्षिण अफ्रीका की यात्रा के स्मरण' भी लिखना चाहते थे। खेद है कि आप अपनी इस इच्छा को पूर्ण नहीं कर सके। पत्रकार के रूप में भी आपने हिन्दी की प्रशंसनीय

सेवाएँ की थीं। आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान व मालवा' के मुखपत्र साप्ताहिक 'आर्य मार्तण्ड' का आपने अनेक वर्षों तक सम्पादन किया था। आपके सम्पादन काल में प्रकाशित उसके अनेक विशेषांक आपकी ऐसी प्रतिभा तथा योग्यता के उत्कृष्ट प्रमाण हैं। इस उपलक्ष्य में आपका अभिनन्दन भी किया गया था। आपने अजमेर में नारी शिक्षा की प्रबल समर्थिका श्रीमती गुलाब देवी 'चाची जी' को समर्पित किए गए अभिनन्दन ग्रंथ का सम्पादन भी किया था। आप अनेक वर्ष तक 'अजमेर पत्रकार परिषद् के अध्यक्ष भी रहे थे।

आपका निधन 4 नवम्बर सन् 1957 को हुआ।

—आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन
(आर्यसन्देश, 24-6-90)

सगुण-निर्गुण स्तुति।

वह परमात्मा सबमें व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सबका अन्तर्यामी सर्वोपरि विराजमान, सनातन स्वयं सिद्ध परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है। सगुण स्तुति, अर्थात् जिस जिस गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना वह सगुण, वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता, जिससे छिद्र नहीं होता, नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पाँव चरण नहीं करता, जिसमें क्लेश, दुःख अज्ञान कभी नहीं होता इत्यादि जिस जिस रागद्वेषादि गुणों से पृथक् मान कर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है। इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण कर्म स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्याय करता है तो आप भी न्यायकारी होवे। और जो केवल भांड के साथ परमेश्वर के गुण कीर्त्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

श्री घनश्याम सिंह गुप्त

श्री गुप्त का जन्म मध्यप्रदेश के छत्तीस गढ़ अंचल के दुर्ग नामक नगर में 22 दिसम्बर सन् 1885 में हुआ था। आपके पूर्वज नागपुर के भोंसले सरदारों के प्रधान सूबेदार थे और उन्होंने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध डटकर मोर्चा लिया था। आपने 20 वर्ष की छोटी-सी आयु में राबर्टसन कालेज जबलपुर के नियमित छात्र के रूप में बी० एस०सी० की परीक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण करके स्वर्ण-पदक प्राप्त किया था। बंग-भंग के दिनों में आपने जहाँ ब्रिटिश सरकार की कार्यवाही का विरोध किया था वहाँ अनेक साथी छात्रों को भी उकसाया था और सन् 1907 में आपने कालेज में हड़ताल भी कर दी थी। आप छात्र-जीवन से ही देश की राजनीति हलचलों में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे थे और प्रायः सभी आन्दोलनों में आपने डटकर कार्य किया था। इसके लिए आपने अनेक बार कारवास की नृशंस यातनाएं भी भोगी थीं।

सन् 1923 में जब सी०पी० तथा बरार असेम्बली का निर्वाचन हुआ था। तब आप उसमें निर्विरोध निर्वाचित हुए थे। इसी प्रकार सन् 1926 में भी आपने अपने विरोधी प्रत्याशी को भारी बहुमत से हराया था। आप जहाँ सन् 1926 से सन् 1929 तक विधान सभा में कांग्रेस पार्टी के नेता रहे वहाँ स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त 'मध्यप्रदेश विधान सभा' के 15 वर्ष (सन् 1937 से 1952) तक अध्यक्ष भी रहे थे।

आपका जहाँ देश का राष्ट्रीय जागरण में प्रमुख योगदान था वहाँ सांस्कृतिक और शैक्षणिक क्षेत्र में भी आपकी सेवायें उल्लेखनीय रही हैं। बी०एस०सी० की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त आप कुछ दिन के लिए देश के उच्चकोटि के नेता और सुधारक महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के निमंत्रण पर उनकी शिक्षा-संस्था 'गुरुकुल कांगड़ी' में भी विज्ञान के प्राध्यापक बनकर गये थे। अपने इस शिक्षण-काल में आप वहाँ के छात्रों में बहुत लोकप्रिय हो गए थे।

आपने जहाँ छत्तीसगढ़ की जनता को राष्ट्रीय क्षेत्र में अभिनन्दनीय सेवा की थी वहां सामाजिक उत्थान और शैक्षणिक जागृति की दिशा में पीछे नहीं रहे थे।

आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य प्रदेश के अध्यक्ष के रूप में आपने जहाँ सारे प्रदेश का मार्ग-दर्शन किया था वहाँ 'तुलाराम आर्य कन्या पाठशाल दुर्ग' के संचालन में भी आपका महत्त्वपूर्ण योगदान था। आप जहाँ अनेक वर्ष तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' में मध्यप्रदेश की आर्यसमाजों के प्रमुख प्रतिनिधि रहे। वहाँ कुछ वर्ष

तक उसके अध्यक्ष के रूप में समस्त आर्य-जगत् का सफल नेतृत्व किया था। हिन्दी पत्रकारिता में 'समाचार-प्रेषण' करने वाली देश की अद्वितीय संस्था 'हिन्दुस्तान समाचार' के आप प्रथम अध्यक्ष रहे थे। जिन दिनों आप 'विधान निर्मात्री परिषद्' के सदस्य थे तब विधान के हिन्दी रूप के निर्माण के लिए जो समिति बनाई गई थी आप उसके भी सम्मानित सदस्य थे। आपके साथी अन्य सदस्यों में सर्वश्री प्रो० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, राहुल सांकृत्यायन, जयचन्द्र विद्यालंकार, मोत्तूरि सत्यनारायण तथा डा० रघुवीर आदि के नाम विशेष महत्व रखते हैं। जिन दिनों आप मध्यप्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष थे तब आपकी ही प्रेरणा पर डा० रघुवीर ने नागपुर में रहकर 'हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली' के निर्माण का महत्वपूर्ण कार्य किया था। आप सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा निर्मित 'सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति' के भी अध्यक्ष थे, जिनके तत्वावधान में सन् 1957 से 1959 तक पंजाब में 'हिन्दी सत्याग्रह' संचालित हुआ था।

आपका निधन 14 जून सन् 1976 को हुआ था।

—आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन
(आर्यसन्देश, 24-6-90

ईश्वर सर्वशक्तिमान्

(प्रश्न) ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वा नहीं? (उत्तर) है, परन्तु जैसा तुम सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जानते हो वैसा नहीं। किन्तु सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित भी किसी की सहायता नहीं लेता अर्थात् अपने सर्व सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है।

पण्डित गणपति शर्मा

श्री शर्मा जी का जन्म राजस्थान प्रदेश के चुरू नामक नगर में सन् 1973 में हुआ था। आपके पूर्वज जयपुर राज्य के सीकर नामक जिले के नानी ग्राम के निवासी थे। आपके पिता भानीराम वैद्य पाराशर गोत्रीय पारीक ब्राह्मण थे। वे चुरू में पौरोहित्य कार्य के साथ-साथ चिकित्सा का कार्य भी किया करते थे। पण्डित गणपति शर्मा की प्रारम्भिक शिक्षा चुरू में ही उनके निरीक्षण में हुई थी और फिर धीरे-धीरे उन्होंने छोटी-सी अवस्था में ही व्याकरण तथा साहित्य में अच्छी प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। आप आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के अन्यतम शिष्य पंडित कालूराम जी के उपदेशों को सुनकर आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रति अनुरक्त हुए थे। क्योंकि आपके पिता भी अनन्य आस्तिक तथा ईश्वर भक्त थे अतः उनका प्रभाव पंडित गणपति शर्मा के जीवन पर भी पड़ा था।

शर्मा जी की गणना आर्यसमाज के प्रमुख वक्ताओं में की जाती थी 'वेदों की अपौरुषेयता' और 'ईश्वर सिद्धि' आपके भाषणों के प्रमुख विषय थे। आपके पाण्डित्य-पूर्ण भाषणों को सुनकरब ड़े-से-बड़े नास्तिक भी ईश्वर की सत्ता में विश्वास करने को विवश हो जाते थे। आपके अकाट्य तर्कों और प्रबल युक्तियों के समक्ष आपके विरोधी अपनी पराजय सहज भाव से स्वीकार कर लेते थे। आप कल्पना कीजिए कि उस युग में ध्वनि-विस्तारक यन्त्रों के अभाव में 15-15 हजार श्रोताओं की मण्डली को घंटों तक अपनी ओजस्वी भाषा के धारावाहिक भाषण से वे ऐसा मंत्र-मुग्ध कर लेते थे। कि उसे समय बीतने का पता ही न चलता था। आपकी प्रखर वाग्मिता और शास्त्रार्थ-पटुता की धाक थोड़े ही दिनों में देश व्यापी हो गई थी। बड़े.बड़े पण्डित, पादरी और मुल्ला आपके पाण्डित्य के समक्ष विनत हो जाते थे।

क्योंकि आप विचारों में आर्यसमाजी थे अतः कभी-कभी विधर्मी लोगों के अतिरिक्त आपको सनातनी पण्डितों से भी शास्त्रार्थ करने को विवश हो जाना पड़ जाता था आपके ऐसे कई शास्त्रार्थ झालरा-पाटन, धार और देवास राज्य में हुए थे। अपनी इसी ललक को पूरा करने की दृष्टि से एक बार आप स्वामी दयानन्द सरस्वती के विद्वान शिष्य पण्डित ज्वालादत्त शर्मा को साथ लेकर काशी के सुप्रसिद्ध सनातन धर्मी पण्डित महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री से शास्त्रार्थ करने के लिए वहां पहुंच गए थे। काशी जाने पर पता चला कि शास्त्री जी अपने गांव गए हुए हैं। फलस्वरूप आप उनके गांव में ही जा पहुँचे और उनसे अपनी इच्छा प्रकट की। पण्डित शिवकुमार शास्त्री मूर्ति पूजा तथा श्राद्ध आदि पौराणिक विवादस्पद विषयों को

छोड़कर किसी और विषय पर शास्त्रार्थ करने की इच्छा व्यक्त की। परिणामस्वरूप शास्त्रार्थ तो नहीं हो सका, पर पण्डित गणपति शर्मा के वैदुष्य का सिक्का काशी के विद्वानों पर जम गया।

आपके द्वारा किये गए शास्त्रार्थों में कश्मीर, रोहतक, कोटा और अजमेर के शास्त्रार्थ विशेष महत्व रखते हैं। सन् 1912 में स्वामी दर्शनानन्द और आपके बीच हुआ 'वृक्षों में जीव का सत्' विषयक शास्त्रार्थ भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह शास्त्रार्थ गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के वार्षिक उत्सव के अवसर पर हुआ था और इस शास्त्रार्थ का विस्तृत विवरण प्रख्यात हिन्दी समीक्षक पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने अपने द्वारा सम्पादित 'भारतोदय' पत्र में प्रकाशित किया था। आपने प्राख्यात विद्वान महामहोपाध्याय पण्डित रामअवतार शर्मा पाण्डेय को भी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के वार्षिक उत्सव पर शास्त्रार्थ के लिए आमन्त्रित किया था, किन्तु असमय में ही आपका देहावसान हो जाने के कारण यह शास्त्रार्थ न हो सका था। आपके द्वारा किये गए महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय शास्त्रार्थों में झालवाड़ में इटावा निवासी पण्डित भीमसेन शर्मा से हुआ शास्त्रार्थ भी प्रमुख है। कश्मीर में प्रसिद्ध ईसाई पादरी जानसन से किया गया शास्त्रार्थ भी अपनी विशिष्टता के लिए सदा याद किया जाता है। आपकी एक-मात्र कृति 'ईश्वर-भक्ति विषयक व्याख्यान' ही आजकल प्रकाशित रूप से उपलब्ध है।

जिन दिनों स्वामी दर्शनानन्द अजमेर में वहां के जैन विद्वानों से शास्त्रार्थ कर रहे थे तब स्वामी जी ने अपने सहयोग के लिए उनका स्मरण किया था। किन्तु खेद है कि आसमयिक देहावसान हो जाने के कारण आप वहाँ नहीं पहुँच सके थे। आपके निधन पर प्रख्यात् कवि श्री नाथूरामशंकर शर्मा ने अपनी श्रद्धांजलि इस प्रकार अर्पित की थी;

भारत का रत्न, भारत का बढ़भागी भक्त
शंकर प्रसिद्ध सिद्ध सागर सुमति का।
मोह तम हारी ज्ञान पूषण प्रताप शील
दूषण विहीण शिरोभूषण विरति का।।
लोक-हितकारी पुण्य-बिहारी वीर,
धीर धर्म धारी अधिकारी शुभ गति का।
देख लो विचित्र चित्र बांच लो चरित्र मित्र,
नाम लो पवित्र, स्वर्गगामी गणपति का।।

आपका आसामयिक अवसान कवल 39 वर्ष की आयु में 27 जून सन् 1912 को जागरावां (पंजाब) में हुआ था।

आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन
(आर्यसन्देश, 24-6-90)

श्री जगन्नाथ भारतीय

श्री जगन्नाथ 'भारतीय' स्वामी दयानन्द सरस्वती के समकालीन थे। उनका विशेष जीवनवृत उपलब्ध नहीं होता। परन्तु उनके द्वारा रचित अनेक ग्रन्थ परोपकारिणी सभा के अजमेर स्थित पुस्तकालय में विद्यमान हैं। श्री भारतीय को स्वामी दयानन्द के दर्शन करने का अवसर प्राप्त हुआ था। तथा वे अपने को वैदिक मत का अनुयायी मानते हैं। स्वामी जी के निधन के पांच वर्ष पश्चात् 1945 वि० में जगन्नाथ भारतीय ने उनकी एक लघु जीवनी लिखी। इनके अधिकांश लेख देहली से प्रकाशित हुए हैं। इससे अनुमान होता है कि ये दिल्ली के निवासी थे। इनके उपलब्ध ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—

1—महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का जीवन चरित्र यह 6 पृष्ठों में प्रकाशित स्वामी जी की एक लघु जीवनी है बाबू रामचन्द्र के प्रबन्ध से रसिक काशी यंत्रालय देहली में संवत् 1945 वि० (श्री मद्दयानन्दाब्द-5) में मुद्रित होकर यह पुस्तक प्रकाशित हुई। पुस्तक यद्यपि छोटी है तथापि इसका महत्व इस दृष्टि से और भी अधिक है कि स्वामी दयानन्द के निधन के पश्चात् लिखी गई और प्रकाशित उनकी यह प्रथम जीवनी है। भूमिका के अन्त में लेखक ने पुस्तक समाप्ति की तिथि 1 अगस्त 1888 अंकित की है।

जगन्नाथ भारतीय ने भारतेन्दुकाल में लोकप्रिय नाटक शैली को अपना कर कुछ रचनायें लिखी हैं। उनके द्वारा लिखित ये नाटक शैली की अपेक्षा विषय वस्तु को ही प्रधानता देते हैं। निम्न रचनाएँ नाटक हैं—वर्णव्यवस्था नाटक—मिरजा आलम वेग के प्रबन्ध से सं 1944 वि० में देहली से प्रकाशित यह पुस्तक वर्ण-व्यवस्था पर आर्यसमाज के दृष्टिकोण को रूपक शैली में प्रस्तुत करती हैं। दो अंकों में समाप्त होने वाला यह नाटक निम्न नान्दी पाठ से आरम्भ होता है :—

वेदान्तेषु यमाहरेकपुरुषं व्याप्यस्थितं रौदसी।
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यं बिषयः शब्दोयथार्थाक्षरः॥
अन्तर्यश्चमुमुक्षुभिर्नियमतः प्राणादिभिर्मृग्यते।
स स्थाणुः स्थिर भक्तियोग सुलभी निश्रेयसायास्तुवः॥

सूत्राधार और नटी की प्रस्तावना के पश्चात् प्रथम अंक प्रारम्भ होता है। नाटक की कथा सारांश इस प्रकार है—एक राजा के समक्ष भोजनदास नामक जन्म का ब्राह्मण नौकरी के लिए आता है। राजा अपने मन्त्री के परामर्श से विद्वानों की

सभा बुलाकर उक्त व्यक्ति का निर्णय कराता है। भोजन भट्ट नामक एक पेटार्थी ब्राह्मण तो उक्त भोजनदास को निरक्षर होने पर भी ब्राह्मण ही मानता है, परन्तु पुरुषोत्तम शास्त्री नामक एक सुपठित विद्वान वर्णव्यवस्था का शास्त्रीय विवेचन करने के उपरान्त यह व्यवस्था देता है कि यह व्यक्ति अपठित - निरक्षर होने के कारण ब्राह्मण नहीं अपितु शूद्र है। द्वितीय अंक में एक जन्मना अब्राह्मण किन्तु शस्त्र पठित सदाचारी व्यक्ति के विषय में पंडित गण व्यवस्था देते हैं कि यह व्यक्ति ब्राह्मण है। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था को गुण, कर्म तथा स्वभाव पर आधारित सिद्ध करना, लेखक का उद्देश्य है। यह लेखक की पुस्तक संख्या 23 है।

2—नवीन वेदान्त नाटक—नाटक शैली, में लिखा गया यह लघु ग्रन्थ संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक 'प्रबोध चन्द्रोदय' की रूपक प्रधान शैली का अनुकरण करता है। इसमें अद्वैत वेदान्त की निस्सारता प्रतिपादित की गई है। पुस्तक रामचन्द्र वैश्य मेरठ द्वारा 1947 वि० में प्रकाशित हुई।

3--समुद्र यात्रा नाटक—विलायत आदि देशों की यात्रा करने से धर्म नहीं होता इस विषय की पुष्टि में अनेक प्रमाण दिए गए हैं। श्री भारतीय द्वारा रचित अन्य सैद्धान्तिक ग्रन्थ—

1—पोप लीला—(असतमत खण्डन) ब्रजभूषण यंत्रालय मथुरा से मार्च 1887 ई० में प्रकाशित पुराणी, जैनी, कुरानी, आदि मतों की आलोचना।

2—धर्माधर्म परीक्षा।

3—मत प्रकाश—भारत में प्रचलित विभिन्न मत मतान्तरों का परिचयात्मक तथा आलोचनात्मक निरुपण 1943 वि० में दिल्ली में छपी।

4—सतमत परीक्षा—वेद और इंजील में कौन-सा ग्रन्थ अपौरुषेय हैं। इसकी मीमांसा की गई है।

5—वेद ब्राह्मण विषय व्याख्यान—जो मिती ज्येष्ठ बदी 8 रविवार सं० 1944 वि० को आर्यसमाज देहली में जगन्नाथ भारतीय ने दिया। पुस्तक संख्या 16 कैसर हिन्द प्रेस देहली में 1887 ई० में छपा।

6—स्त्री धर्म प्रवोधिनी।

7—वैश्य यज्ञोपवीत व्यवस्था—(मीमांसा वैश्यों के यज्ञोपवीत अधिकार का निरुपण।

8—नित्य कर्म पद्धति—मिर्जा आलमबैग के प्रबन्ध से देहली में से० 1944 वि० (1887 ई०) में छपी पुस्तक संख्या 25)

9--दिनचर्या—संवत् 1946 वि० में पं० गुरुदत्त शुक्ल ने हनुमत प्रेस कालाकांकर से छाप कर प्रकाशित की। इसके आवरण पृष्ठ पर भारतीय पुस्तकालय तथा भूमिका में भारतीय आफिस देहली का उल्लेख होने से अनुमान होता है कि जगन्नाथ भारतीय किसी पत्र के सम्पादक अथवा

प्रकाशक भी रहे होगें । 5 पृष्ठों की यह लघु पुस्तिका लेखक की 31वीं पुस्तक हैं ।

10—मनुष्य धर्म संहिता—मनुष्य मात्र के लिए निवृत्ति मार्ग का उपदेश ।

11—सत्यमत निरूपण ।

12 - तीर्थ यात्रा ।

जगन्नाथ भारतीय के स्फुट ग्रन्थ :—

13—महाजनी प्रकाश—3 भाग

14—लघु ज्योतिष सार

15—शरीर रत्न

16 गुलदस्त-ए-हिन्द

17—भारत अष्टोत्तरी (एक सौ आठ वर्ष की जंत्री (पंचाग)

18—भारतोदय (सूर्य के उदय अस्त का विचार) ।

लेखक द्वारा तैयार किए जा रहे आर्य साहित्यकार कोश में अन्य ऐसे सैकड़ों साहित्यकारों का जीवन एवं कृतित्व का विवरण दिया जा रहा है, जिनको आज हम भूला बैठे हैं ।

— डॉ० भवानीलाल भारतीय

(आर्यसन्देश, 1-7-90)

ईश्वर चाहे सो करे ।

(प्रश्न) हम तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर चाहे सो करे, क्योंकि उसके ऊपर दूसरा कोई नहीं है । (उत्तर) वह क्या चाहता है ? जो कहो कि सब कुछ चाहता और कर सकता है तो हम तुमसे पूछते कि परमेश्वर अपने को मार, अनेक ईश्वर बना, स्वयं अविद्वान् चोरी व्यभिचार आदि पाप कर्म कर और दुःखी भी हो सकता है ? जैसे ये ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव से विरुद्ध हैं तो जो तुम्हारा कहना कि वह सब कुछ कर सकता है यह कभी नहीं घट सकता । इसलिए शक्तिमान् शब्द का अर्थ जो हमने कहा, वही ठीक है ।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

पं. भीमसेन विद्यालंकार

पंजाब में जिला गुरदास पुर के श्री हरगोविन्दपुर गांव के सदस्य लाला बिशनदास के घर पर जम्मू में भल्ला क्षत्रिय परिवार के पं. भीमसेन विद्यालंकार का जन्म 22 अक्तूबर 1900 को हुआ था। लाला बिशनदास जी हरगोविन्दपुर गांव की आर्यसमाज के संस्थापक प्रधान थे। उन्होंने ही महात्मा मुंशी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) के गुरुकुल खोलने के प्रस्ताव का पूर्ण समर्थन किया था तथा हर संभव सहयोग दिया था। हरगोविन्दपुर में एक छात्रवास युक्त कन्या महाविद्यालय भी उनके प्रसास से ही खोला गया। यह प्रयास आर्य कन्या महाविद्यालय जालंधर से भी पहले उन्होंने किया था।

इसी समृद्ध परम्परा वाले परिवार में उत्पन्न पं. भीमसेन जी ने गुरुकुल कांगड़ी से विद्यालंकार की उपाधि प्राप्त की और कुछ वर्ष वहीं पर अध्यापन कार्य भी किया। उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द के लोकोपकारी कार्यों में श्रद्धा एवं निष्ठापूर्वक भाग लिया। बाद में वे लाहौर में प्राध्यापक रहे। सरदार भगत सिंह, सुखदेव, भगवतीचरण, किशोरीलाल आदि क्रान्तिकारी उनके शिष्य थे।

1924-25 में वैदिक अर्जुन (दिल्ली) के सम्पादक बनें। इनके बाद वह पुन लाहौर चले गए। और वहां से 'सत्यवादी' का सन् 1925 में प्रकाशन आरंभ किया 1927-28 में उन्होंने सर्वेंष्ट आफ पीपुलस सोसायटी द्वारा राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के निरीक्षण में प्रकाशित 'वन्देमातरम्' 1927-28 तथा पंजाब कसरी (1929) का सम्पादन किया। लाहौर कांग्रेस के समय 1929 में उन्होंने पंजाब केसरी का दैनिक संस्करण भी निकाला। अर्जुन के सम्पादन काल में वे एक साल जेल में भी रहे। उनको यह सजा शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी के दण्डित होने का रोमांच, पूर्ण समाचार प्रकाशित करने के लिए मिली थी।

वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन पंजाब के मंत्री भी रहे। उन्हें सरदार पटेल की अध्यक्षता में एक राष्ट्रभाषा सम्मेलन भी आयोजित किया था। उन्होंन लैला मजनू, हीररांझा आदि लोककथाओं को सर्वप्रथम देवनागरी हिन्दी से प्रकाशित कराया।

वे 1933-37 में मासिक अलंकार के सम्पादक रहे। 1934-52 में उन्होंने आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के मुखपत्र 'आर्य' का सम्पादन किया। वे 1934 से 1952 के दौरान 17 वर्ष तक इस के मंत्री रहे।

उन्होंने नमक सत्याग्रह में भाग लेने के लिए गोण्डा जेल की छः मासतक

यातनाएं भी भोगीं। पं. जी अंग्रेजी दिल्ली के अतिरिक्त गुजराती, पंजाबी, मराठी के भी सुयोग्य विद्वान थे। उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास शैली पर भी अनेक पुस्तकों का प्रणयन किया।

उनके परिवार के सदस्य—श्रीमती वेदकुमारी (पत्नी), श्री रामपाल विद्यालंकार (प्रधान-आर्यसमाज मालेर कोटला), श्री अजयभल्ला (प्रधान आर्यसमाज करोल बाग दिल्ली), श्रीमती शान्ता मल्होत्रा (प्रिंसिपल आर्य गर्ल्स कालेज अम्बाला छावनी) सुश्री उमा भल्ला (प्रिंसिपल, गवर्नमैन्ट कालेज पंचकुला), अनिलकुमार' और अरुण कुमार यथाशक्ति आर्यसमाज तथा वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार के अतिरिक्त मानवता के आयामों को विस्तार देने में संलग्न हैं।'

डा. धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 22-7-90)

परमेश्वर कीं स्तुनि प्रार्थना उपासना।

(प्रश्न) परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए वह नहीं? (उत्तर) करनी चाहिये। (प्रश्न) क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वाले का पाप छोड़ देगा। (उत्तर) नहीं। (प्रश्न) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना। (उत्तर) उनके करने का फल अन्य ही है। (प्रश्न) क्या है? (उत्तर) स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण का स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और साहस का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

दिवंगत आर्य श्रेष्ठी—

महाशय जगन्नाथ जी भारतीय आर्योपदेशक

एक जुलाई 1990 के 'आर्यसन्देश' के अंक में श्री डा० भवानी लाल जी भारतीय का श्री जगन्नाथ जी भारतीय के साहित्य पर लेख मेरी दृष्टि में आया। मैंने इस को बड़ी रुचि से पढ़ा। पाठकों के ज्ञानवर्द्धन के लिए मैं भी श्री जगन्नाथ जी के सम्बन्ध में कुछ लिखना आवश्यक और उपयोगी समझता हूं।

श्री डा. भारतीय जी ने लिखा है श्री कि जगन्नाथ भारतीय ने ऋषि के दर्शन किए थे और वह स्वयं को वैदिक धर्म के अनुयायी मानते थे। पाठक इसके साथ यह भी नोट कर लें कि श्री जगन्नाथ न केवल एक साहित्यकार और वैदिक धर्म के आस्था रखने वाले पुरुष थे प्रत्युत्त वह एक जाने माने आर्य धर्मोपदेशक थे। उनको आर्य सिद्धान्तों का बहुत गहरा ज्ञान था और उनकी लेखन शैली बड़ी साहित्यिक व प्रभावशाली थी। यदि मैं यह कह दूं कि उनकी शैली उस काल के अनेक विख्यात हिन्दी लेखकों से अधिक साहित्य है तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है। वह खड़ी बोली में लिखते थे।

उनका साहित्य हिन्दी पठित जनता में तब ऐसे ही चाव से पढ़ा जाता था जैसे उर्दू पठित जनता धर्मवीर पं. लेखराम व पं. कृपाराम शर्मा के साहित्य को पढ़ती थी। उस युग में नाटक आदि बहुत रुचि से पढ़े जाते थे जैसे आज उपन्यास में पाठकों की अधिक रुचि है। जगन्नाथ जी नाटक, वर्तालाप व संवाद शैली से आर्य सिद्धान्तों को हृदयंगम कराने में बड़े सक्षम थे। उस युग के अनेक जाने माने आर्य विद्वान संन्यासी, प्रचारक, समाजों के प्रधान व मन्त्री उनके साहित्य को पढकर पक्के व सच्चे आर्य बने। हरियाणा व देहली क्षेत्र तथा उ०प्र० के पश्चिमी जिलों के पुराने महारथियों में से कोई बिरला ही होगा जिसने जगन्नाथ जी का 'धर्म निर्णय' नहीं पढ़ा होगा।

लगता है कि मान्य श्री भारतीय जी ने इसी पुस्तक को 'धर्म अधर्म परीक्षा' लिख दिया है। भारतीय जी ने इसका यही नाम सुना होगा। पुस्तक का नाम 'धर्म निर्णय' है। आर्यसमाज के कितने ही दीवानों पर इस पुस्तक ने ऐसा गूढ़ा रंग चढ़ाया कि वे इस अनूठी पुस्तक का यदा कदा पारायण करते ही रहते थे। उनके लिए यह कुलियात आर्य मुसाफिर, स्वामी दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह व उपनिषद् प्रकाश से कम न थी।

दूर क्यों जावें, हम अपने पाठकों को यह बताना चाहते हैं कि गुरुकुल झज्जर

के स्वामी ओमानन्द जी पर वैदिक धर्म का रंग चढ़ाने वाले आर्य साहित्य में 'धर्म निर्णय' भी एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। आज भी स्वामी ओमानन्द जी से आप महाशय जगन्नाथ जी व उनके साहित्य की बात छेड़ दें तो आप देखेंगे कि किस प्रकार तरंगित हृदय होकर वे अपने यौवन के दिनों को याद करने लग जाते हैं। स्वामी ओमानन्द जी भाव विभोर होकर अपने ऊपर इस पुस्तक का प्रभाव सुनाते हैं। स्वामी ओमानन्द जी ने जिन पुस्तकों का जीवन में विशेष प्रसार किया उनमें 'धर्म निर्णय' भी एक है। इन्होंने अपने जीवन में यह पुस्तक सहस्रों पाठकों तक पहुँचाई है।

यह भी स्मरण रहे कि 'धर्म निर्णय' चार भागों में छपी थीं। चारों भाग मिलकर एक सहस्र पृष्ठों के लगभग होंगे। जगन्नाथ जी के लिए ऋषि दयानन्द की विचार धारा केवल समाज सुधार तक ही सीमित नहीं थी। यह वेदोक्त ईश्वर का स्वरूप, ईश्वरीय ज्ञान की नित्यता आदि सृष्टि में अनादि वेद ज्ञान का अविर्भाव, ईश्वर उपासना क्यों व कैसे, कर्मफल सिद्धान्त, त्रैतवाद, पुनर्जन्म, मुक्ति, मुक्ति से लौटना वर्णाश्रम व्यवस्था, आर्षयोग पद्धति आदि सब मूल सिद्धान्तों के एक दृढ़ अनुयायी व प्रचारक थे।

उन्होंने किसी सभा के सहारे प्रचार किया या अपनी लग्न से ही धर्म प्रचार के लिए समर्पित रहे, यह निश्चयपूर्वक कहना तो कठिन है परन्तु, हमारा अध्ययन हमें यही बताता है कि वह किसी सभा की ओर से नहीं प्रत्युत स्वयं स्फूर्ति से ही धर्म प्रचार में लगे रहते थे। उस काल में था ही यही दृश्य। क्या किसान और क्या दुकानदार, क्या वैद्य और क्या बाबू और क्या अध्यापक सब समाजी धर्म प्रचार करना अपना कर्तव्य व सौभाग्य समझते थे। श्री पं. लेखराम जी व श्री पं० राम चन्द्र जी देहलवी किसी उपदेशक विद्यालय के स्नातक तो थे नहीं। बाद के उपदेशक अपने अपने विद्यालयों में पण्डित लेखराम जी का साहित्य पढ़कर विद्वान बने।

आज आर्यसमाज के नगर कीर्तनों में नारे ही नारे होते हैं। 'जय ऋषि की' छुआ छात मिटाने को ऋषि दयानन्द आए थे। नारी शिक्षा दिलाने को ऋषि दयानन्द आए थे। और बस [अभी कल की बात है मैंने अपनी आंखों से देखा व कानों से सुना। महात्मा आनन्द भिक्षु जी महाराज जैसे त्यागी तपस्वी कर्मठ पूज्य पुरुष देहली के श्रद्धानन्द बलिदान पर्व की शोभा यात्रा में झूम झूम कर प्रभु भक्ति, वैदिक धर्म व आर्य जाति के बलिदानियों के भजन गा गाकर प्रेम व उत्साह का एक स्वर्गीय दृश्य उपस्थित कर देते थे। श्री पं. रामचन्द्र जी देहलवी व वैद्य प्रह्लाद दत्त जी का देहली वालों ने प्रेमरस से भजन गीत कितनी बार सुना! जगन्नाथ जी के युग के आर्य पुरुष तो गाया करते थे :—

परिव्राजकाचार्य स्वामी दयानन्द।
पधारा है परलोक डंके बजाता॥

यह भजन नगर कीर्तनों में गाया जाता था इसी का परिणाम था कि जगन्नाथ जी स्वयं आध्यात्मिक प्रवृत्ति के आर्य पुरुष थे। संध्या, यज्ञ, योग को जीवन का श्रृंगार मानते थे। तब आर्यसमाजी अपने एकेश्वरवाद के लिए जाना पहचाना जाता था। योग प्रचार की इन्हें धुन थी।

—प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु
(आर्यसन्देश—22-7-90)

आचार्य राम देव

आचार्य रामदेव उच्च कोटि के विद्वान, दार्शनिक तत्त्व वेदवेत्ता, सुधारक और धर्माचार्य थे, वे अपनी धुन के पक्के और उपयुक्त स्वभाव के थे, उनकी वाणी में महान् शक्ति थी, उनकी रुचि सांसारिक भोगों के प्रति नहीं थी, उनका ध्यान तो देश धर्म और जाति की सेवा के लिए था। जब स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल कांगड़ी के लिए कार्यकर्त्ताओं का आह्वान किया तो वे भी आगे आये। उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के लिए लम्बे समय तक काम किया तथा कन्या गुरुकुल देहरादून के लिए तो उन्होंने अपना जीवन ही लगा दिया। उनके जन्म का नाम रामदास था परन्तु उन्होंने अपने नाम रामदेव को ही सार्थक किया। नारी जाति को अशिक्षा, लोकाचार, परम्परागत रूढ़ियों तथा अन्धविश्वास को चारदीवारी से उन्मुक्त कर विशुद्ध आर्य संस्कृति के जागरूक वातावरण में लाकर खड़ा करना उनके जीवन का लक्ष्य था। महर्षि दयानन्द सरस्वती का उन पर विशेष प्रभाव था। उनके समय में लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति चल रही थी, निश्चित है कि इस पद्धति से भारतीयता की भावना ही नष्ट होना स्वाभाविक था। उस युग की एक आवश्यकता थी कि ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा हो जो युग वाहिनी आर्य सभ्यता तथा संस्कृति से ओत प्रोत हो महर्षि दयानन्द सरस्वती भी यही चाहते थे। गुरुकुल कांगड़ी इसी भावना का साकार आदर्श था। महात्मा मुन्शीराम के साथ आचार्य रामदेव भी थे, पर क्या इससे हमारे उद्देय की पूर्ति हो सकती थी।

इन उद्‌देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यकता थी कि कन्याओं के लिए भी वे ही सुविधाएँ दी जायें जो लड़कों के लिए दी गई थीं। दिल्ली के दानी सेठ रघुमल की ओर से कन्या गुरुकुल खोलने की घोषणा तथा एक लाख रुपये दान की घोषणा की गई। इस समाचार से आचार्य जी का हृदय प्रसन्नता से खिल उठा। 1923 में दीपावली के दिन दरियागंज की कोठी में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के संरक्षण में एक कन्या गुरुकुल प्रारम्भ किया गया। इसी कन्या गुरुकुल की बाद में देहरादून ले जाया गया, इस गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली पाठ्य विधि के निर्माण में आचार्य जी का विशेष योग था। कन्या गुरुकुल की पाठ्य विधि आचार्य जी की विद्वता, प्रतिभा और उदारता का प्रतिबिम्ब है। यह प्राचीनता और आधुनिकता का अद्‌भुत सम्मिश्रण है। आदर्श और व्यवहार का मधुर सामंजस्य है।

आचार्य जी ने शिक्षा के अतिरिक्त आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के लिए भी निरन्तर कार्य किया। वे आर्यसमाजों के उत्सवों में बड़े सहज स्वाभाविक शैली में

विद्वतापूर्ण भाषण देने की क्षमता रखते थे। 1936 में आचार्य रामदेव जी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान और सार्वदेशिक सभा के वरिष्ठ उप-प्रधान बन गए थे।

यदि गुरुकुल कांगड़ी के पुस्तकालय को देखा जाए तो अनेक ग्रंथ ऐसे मिलेंगे जिसमें आचार्य जी के लगाए चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। वे स्वाध्यायशील थे। उन्होंने वेदों और ब्राह्मण ग्रंथों के मूल पाठ के साथ-साथ अंग्रेजी अनुवाद भी पढ़े थे। अंग्रेजी अनुवाद के माध्यम से उन्होंने बौद्ध और जैन साहित्य का विशेष अध्ययन किया था।

आचार्य जी का व्यक्तित्व बहुत गौरवपूर्ण था। उनका रहन-सहन भी बहुत सादा था उनके वस्त्र कीमती तो नहीं थे पर वे साफ सुथरे होते थे।

आर्यसमाज के क्षेत्र में उनके योगदान को सदैव याद किया जाएगा। महान् पुरुषों के जीवन में आने वाली पीढ़ियों के लिए ज्योति स्तम्भ का कार्य करते हैं। आचार्य रामदेव भी ऐसे ही ज्योति स्तम्भ थे। महात्मा नारायण स्वामी ने लिखा है, अंग्रेजी भाषा के अध्यापक रामदेव से उनका परिचय गुरुकुल वृन्दावन के उत्सव पर हुआ था। उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि राज्य और प्रबन्ध सम्बन्धी मामलों में ब्राह्मण को क्षत्रिय के अधीन रहना पड़ेगा। बस पंडित अखिलानन्द और पंडित तुलसीराम इसी बात से उनके घोर शत्रु बन गए परन्तु वे पीछे नहीं हटे। उन्होंने मौलाना मोहम्मद अली, शौकत अली जैसे लोगों को मुंहतोड़ जवाब दिया क्योंकि उनकी विद्वता अपार थी।

उनकी लेखन शक्ति भी उनकी व्यक्तित्व का परिचय देती है। परिणामतः भारत वर्ष का इतिहास, आर्य और दस्यु "फाउण्टेन हैड आफ रिलीजन" उनकी विद्वत्ता का सशक्त प्रमाण है।

कन्या गुरुकुल देहरादून तो उनका वास्तव में स्मारक है। उनकी सुपुत्री दमयन्ती कपूर उसी त्याग और तपस्या से इस संस्था का संचालन कर रही हैं। शब्द के प्रचलित अर्थों में भले ही वे शहीद न हों पर मैं उन्हें शहीद ही मानता हूँ। उन्होंने आर्यसमाज के लिए अपने आप को शहीद कर दिया।

उनकी स्मृति में सादर विनत श्रद्धांजलि।

—डा० धर्मपाल

(आर्य सन्देश, 5-8-90)

अमर शहीद ऊधम सिंह

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपने प्राणों की बलि देने वाले अमर शहीद ऊधम सिंह का जन्म संगरुर नाम जिले के सुनाम नामक कस्बे में 26 दिसम्बर 1899 को हुआ था। आपके पिता का नाम श्री टहल सिंह था। दो वर्ष की अवस्था में ही ऊधम सिंह मातृ प्रेम से बिछुड़ गये। ऊधम सिंह के दो भाई थे, चंचल सिंह एवं साधू सिंह। चंचल सिंह साधू हो गया था, उसने घर से अपना सम्बन्ध छोड़ दिया था। साधू सिंह और वीर ऊधम सिंह बड़े प्रेम से रहते थे कुछ वर्षों बाद ऊधम सिंह के पिता का स्वर्गवास हो गया था। चंचल सिंह ने दोनों भाइयों को अनाथालय में भर्ती कर दिया। अब दोनों भाई साथ-साथ पढ़ते और काम सीखते थे। परन्तु देवयोग से ऊधम सिंह को इस संसार में अकेले ही रहना था। 17 वर्ष की अवस्था में वह अपने भाई साधू सिंह से बिछुड़ गये। साधू सिंह की मृत्यु से ऊधम सिंह को अत्यधिक आघात पहुँचा। अब ऊधम सिंह इस संसार में अकेला था।

ऊधम सिंह हंसमुख व्यक्ति था, परन्तु वह प्रायः विचार मग्न रहता था। एक दिन एक ज्योतिषि मित्र मंडली की ओर से गुजरा। एक मित्र ने उस ज्योतिषी को बुला लिया और सबने अपना हाथ क्रमशः दिखलाया। अब ऊधम सिंह की बारी थी। परन्तु वह अपने विचारों में मग्न थे। एक मित्र तारा सिंह ने कहा 'साहब बहादुर, आप भी पंडित जी को अपना हाथ दिखला दीजिए।'

ऊधम सिंह ने हंसते हुए कहा, मैं हाथ तो नहीं दिखाउंगा। हां, यदि ज्योतिषी जी मेरा पैर देखना चाहें, तो देख सकते हैं।

ज्योतिषी ने ऊधम सिंह की ओर देखकर कहा—"बहुत अच्छा साहब बहादुर अपना पैर ही दिखाईये।" ऊधम सिंह ने जूते और मौजे उतार कर अपना पैर ज्योतिषी की ओर बढ़ा दिया। ज्योतिषी ने गंभीर स्वर में कहा—"बाबू साहब! आप बुरा तो न मानेंगे? मैंने आपको पहले कभी नहीं देखा है। इस समय आपकी रेखाएं देखी हैं। इसलिए जो कुछ रेखाएं देखी हैं, बताती हैं, वही कह सकता हूं। ऊधम सिंह ने उत्तर दिया कि मैं सब कुछ सुन सकता हूं।

उस महान् ज्योतिषि ने विनम्रता पूर्वक कहा "बाबू साहब! आपके पैर देखने से मालूम होता है कि आप दो बार विदेश जाएंगे। परन्तु दूसरी बार वहां से वापस नहीं लौटेंगे। आपके हाथों द्वारा किसी का बध होगा। इस कारण आपको फांसी की सजा मिलेगी।

ऊधम सिंह प्रसन्नता से हंस पड़े। उनके अन्य साथी अवक् रह गये। क्योंकि इस बात के रहस्य को ऊधम सिंह जानते थे।

जलियांवाला बाग और ऊधम सिंह—राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए सरकार ने रोलैक्ट एक्ट पारित किया। भारतीयों ने इसका विरोध किया। महात्मा गांधी ने इस एक्ट को काला कानून कह कर 30 मार्च 1919 से देश व्यापी आन्दोलन प्रारम्भ किया। अमृतसर की जनता ने सरकार की दमन प्रक्रिया समाप्त करने के लिए और गांधी जी के आन्दोलन को सफल बनाने के लिए जलियांवाला बाग में वैसाखी के मेले के दिन एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया। इस सभा में 20 हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए। इस सभा में देशभक्त वीर ऊधम सिंह भी सम्मिलित हुआ।

उस समय पंजाब में माइकेल ओड्वायर प्रशासन का मुख्य अधिकारी था। और जनरल डायर सेना का कमाण्डर था।

जनरल डायर ने अपने सैनिकों के साथ बाग को चारों ओर से घेर लिया। मुख्य द्वार पर मशीनगन फिट कर ली। विशाल सभा को बिना किसी प्रकार की चेतावनी दिए मशीनगन से भूनना प्रारम्भ कर दिया। डायर जनरल जनता को अच्छी तरह देख रहा था। जहां पर व्यक्तियों की संख्या अधिक थी उसी ओर बराबर गोलियों की बौछार हो रही थी। 1650 राउंड गोलियां चलती गयीं। किसी को भागने का अवसर न मिल पाया।

इस अवसर पर ऊधम सिंह भी स्त्री के मृत पति को ढूंढ़ने में घायल हो गये। इस गोली वर्षा में कितने ही निर्दोष स्त्री-पुरुष और बच्चों को भून दिया गया। ऊधम सिंह ने इस दृश्य को देखकर खून का बदला खून से लेने की प्रतिज्ञा की।

इस घटना की रात्रि में पूरे शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया। जिन घायलों को बचाया जा सकता था, चिकित्सा व्यवस्था न हो सकने के कारण बचाया न जा सका। कांग्रेस की जांच समिति के अनुसार इस काण्ड में 1200 मरे और 3600 घायल हुए।

सरकारी हण्टर जांच समिति के सम्मुख क्रूर एवं निर्दयी जनरल डायर ने अपना बयान देते हुए कहा "मैंने यह फैसला किया था, कि अगर मैं गोली चलाऊंगा तो फिर जम कर अच्छी तरह चलाऊंगा, जिससे कि पूरा असर पड़े।

बयान देकर लौटते समय ट्रैन में अपनी बड़ाई करते हुए कहा कि उस समय पूरा शहर मेरे रहम पर था। एक बार मेरी इच्छा हुई कि उस विद्रोही शहर को मैं राख के ढ़ेर में बदल दूं। फिर मुझे तरस आ गया।

इस प्रकार की घटनाओं से ऊधम सिंह के हृदय पर तीव्र आघात पहुंचा। उन्होंने भारत वर्ष के इस अत्याचार को समाप्त करने और अपने जीवन की आहुति देने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली।

सर वेलेंटाईन ने इस जलियांवाला बाग की घटना का वर्णन करते हुए कहा है—"यह ब्रिटश भारत के इतिहास में एक काला दिन था। ब्रिटिश प्रशासनिक अधिकारी इस आन्दोलन को कुचलने का अथक प्रयत्न कर रहे थे परन्तु इन प्रयत्नों ने भारतीय जनता में स्वाधीनता के लिए मर मिटने की भावना जागृत कर दी।" मैजनी ने ठीक कहा है—"Ideas ripen quickly when nourished by the blood of martyrs"

ऊधम सिंह का भारत छोड़ना—ऊधम सिंह ने अनाथालय छोड़ दिया। अनेक संघर्षों का सामना करते हुए अफ्रिका पहुंचे। अफ्रिका से वे अमेरिका में रहने वाले भारतीयों को संगठित किया। भारत की स्वतन्त्रता के लिए साधनों को एकत्र करने में लग गये।

गर्म दल की ओर से भारत लौटने का निर्देश मिला। ऊधम सिंह 25 भारतीय और एक अमेरिकी महिला के साथ अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर भारत लौटे। अमेरिकी महिला ऊधम सिंह के त्याग और आदर्श को देखकर प्रभावित हो गई थी और ऊधम सिंह के क्रान्तिकारी कार्यों में सहयोग देने लगी थी।

एक दिन ऊधम सिंह अपने दो साथियों एवं अमेरिकी महिला के साथ लाहौर से बाहर जा रहे थे। मार्ग पर पुलिस ने घेर लिया। ऊधम सिंह ने सांकेतिक भाषा में कहा कि कोई अपना सम्बन्ध नहीं बतलाएगा। पुलिस ने ऊधम सिंह को गिरफ्तार कर लिया। अन्य व्यक्ति पुलिस की आंखों में धूल झोंक कर साफ बच गए। ऊधम सिंह के पास से 4 अमेरिकी पिस्तौल और 400 गोलियां मिलीं। ऊधम सिंह को 4 वर्ष की कठोर सजा हुई। परन्तु ऊधम सिंह का मन इस प्रकार की घटनाओं से जरा भी विचलित नहीं हुआ।

1932 में वे जेल से मुक्त हुए। परन्तु अब भी पुलिस और सी०आई०डी० उनके पीछे लगी हुई थी। सी०आई०डी० की आंखों में धूल झोंककर एम०एम० सिंह के नाम से पासपोर्ट प्राप्त किया। वे यूरोप तथा अन्य देश होते हुए लंदन पहुंचे।

लंदन में विचार मग्न रहते और अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तत्पर रहते थे। वे कभी-कभी पंजाब में रहने वाले हरनाम सिंह हलवाई के पास बैठकर विचार विमर्श किया करते थे।

ऊधम सिंह अंग्रेजों की गतिविधियों पर हमेशा नजर रखते थे। 13 मई 1940 को कैल्टन हाल में प्रमुख राजनीतिज्ञों का सम्मेलन आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन में भारत के प्रशासनिक अधिकारी भी थे। ऊधम सिंह इस सम्मेलन में उपस्थित थे। ओड्वायर ने जलियांवाला बाग में किए गए कुकृत्यों को बहुत ही अच्छा कार्य बताते हुए अपनी खूब बड़ाई की। साढ़े चार बजे सभा समाप्त हुई।

ऊधम सिंह के लिए यह सुअवसर था। उन्होंने आगे बढ़कर 5-6 फायर किये। ओड्वायर को दो गोलियां लगीं और उसकी घटना स्थल पर मृत्यु हो गयी। पंजाब के भूतपूर्व गवर्नर लुईडेन का एक हाथ टूट गया था। बम्बई के भूतपूर्व

गवर्नर लार्ड लिमिगटन और भारत के मंत्री लार्ड जेटलैण्ड घायल हुए। गोली की आवाज सुनकर भगदड़ मच गयी। ऊधम सिंह दरवाजे की ओर से भागे। बीच में दो व्यक्तियों ने पकड़ लिया। पुलिस ने ऊधम सिंह को गिरफ्तार कर लिया। उनके पास एक अमेरिका रिवाल्वर, 25 राउण्ड गोली और 1 चाकू पकड़ा गया। गिरफ्तार होने पर ऊधम सिंह ने अपना नाम राम मुहम्मद सिंह आजाद बतलाया।

अब ऊधम सिंह को किसी बात की चिन्ता न थी। वे अपने उद्देश्य को पूरा कर चुके थे। ओल्ड वैली सेंट्रल क्रिमिनल्स कोर्ट में ऊधम सिंह पर मुकदमा चलाया गया। यह मुकदमा नहीं वरन् एक नाटक था।

मजिस्ट्रेट ने पूछा, तुमने ओड्वायर की हत्या क्यों की।' ऊधम सिंह ने गरजते हुए कहा—'मैंने अंग्रेजी साम्राज्य में लोगों को भूख से मरते देखा है। मैंने उसका हिंसात्मक विरोध किया है। मुझे इस बात का दुःख नहीं है। अपने देश के लिए करना मेरा परम कर्त्तव्य था। मुझे इसकी परवाह नहीं कि मुझे मृत्यु दण्ड या आजीवन कारावास या कालापानी की सजा दी जाएगी। मुझे मृत्यु का भय नहीं। बुढ़ापे तक मरने के इंतजार से क्या फायदा? जवान रहते ही मर जाना चाहिए यही ठीक है और में यही कर रहा हूं।'

कोर्ट ने फांसी की सजा सुना दी जो कि पहले से निश्चित कर रही थी। 12 जून 1940 को इस भारतीय वीर को पेंटन विल जेल में फांसी की सजा दी गयी। इस भारतीय शहीद की अस्थियां 34 वर्षों तक लंदन के एक जेल में रखा गया। 34 वर्षों बाद 19 जूलाई 1974 को ऊधम सिंह का अस्थि कलश भारत आया। जनता ने अस्थि-कलश का भव्य स्वागत किया। देश के विभिन्न नेताओं ने एवं जनता ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

डैनियल बेब्स्टर की निम्न पंक्तियां ऊधम सिंह की जीवनी पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती हैं---Let our object be, our country, our whole country and nothing than our country.

ऊधम सिंह को मौत की चिन्ता नहीं वरन् देश की चिन्ता थी भारत को ऐसे वीरों पर गर्व है। इन शहीदों का नाम भारतीय इतिहास में लिखे जाने पर भारतीय इतिहास सूर्य के समान तेजवान हो उठता है। देश ऐसे वीरों का देवताओं की भांति यशमान करता है।

—डा० भारतेन्दु द्विवेदी
(आर्यसन्देश, 12-8-90)

श्री अर्जुन देव बगाई

आपका जन्म सन् 1902 ई० में झंग (पाकिस्तान) में हुआ। पिता श्री रामदित्ता मल सुशिक्षित आर्य थे और इन्स्पेक्टर आफ स्कूल के पद पर कार्यरत थे। अर्जुनदेव जी की शिक्षा डी०ए०वी० कालेज लाहौर में हुई और पंजाब विश्वविद्यालय से उन्होंने बी० ए० एवं एल-एल०बी० की परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। वे पंजाब के आर्य समाजों से 'सम्बद्ध मुकद्दमों की उत्साह व लगन के साथ पैरवी किया करते थे। पंजाब हाई कोर्ट में जब सत्यार्थप्रकाश की जब्ती को लेकर मुकद्दमा चला, तो श्री अर्जुनदेव बगाई, रायबहादुर, दीवान बद्रीदास, जो इस मुकद्दमे में आर्यसमाज के सीनियर वकील थे, के साथ सम्बद्ध होकर मुकद्दमे में पैरवी को तत्पर रहे।

आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। वे सभा की ओर से मिण्टगुमरी, लाहौर, टोबा टेकसिंह और उकाड़ा में अनेक आर्य-संस्थाओं के व्यवस्थापक थे। अपने भाई श्री सन्तलाल विद्यार्थी के साथ वे जीवन-पर्यन्त आर्य-समाज के कार्यकलाप में उत्साहपूर्वक भाग लेते रहे। हैदराबाद के सत्याग्रह में उनका सक्रिय योगदान था। स्वामी स्वतन्त्रानन्द, स्वामी वेदानन्द, पंडित चमूपति, पंडित बुद्धदेव, महाशय कृष्ण, पंडित विश्वम्भरनाथ, लाला नारायणदत्त, पंडित ठाकुरदत्त (अमृतधारा), जस्टिस मेहरचन्द्र महाजन, सर गोकुलचन्द नारंग और सर बख्शी टेकचन्द सदृश आर्य नेताओं के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था, और वे इनके सहयोगी थे।

भारत के विभाजन के समय 14 अगस्त 1947 को लाहौर में उन पर आततायियों ने आक्रमण कर दिया और लाहौर में ही वे असमय में दिवंगत हो गए।

— मूलचन्द गुप्त
(आर्यसन्देश, 12-8-90)

युवक हृदय सम्राट–पं० नरेन्द्र

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह के अवसर पर पं० नरेन्द्र जी के दर्शन करने का सौभाग्य मिला था। यह वही वीर था जिसके ओजस्वी भाषण सुनकर युवकों के उत्साही हृदयों में स्वाभिमान, देशभक्ति, तथा बलिदान की भावनाएं हिलोरें लेने लगती थी। पं० जी के भाषणों से प्रभावित होकर नेहरू जी ने स्वयं कहा था—"जनता पर कन्ट्रोल करने में यह छोटा-सा व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली है।"

पं० नरेन्द्र का जन्म 15 अप्रैल 1907 को रामनवमी के दिन हुआ था। उनका निधन 24 सितम्बर 1976 को हुआ। पं० नरेन्द्र (स्वामी सोमानन्द सरस्वती) आर्यजगत के वरिष्ठ नेता एवं हैदराबाद के लौह पुरुष के रूप में स्मरण किए जाएंगे! युवक हृदय सम्राट, पं० नरेन्द्र निष्कलंक देशभक्त, स्वतंत्रता सेनानी, त्यागमूर्ति, धर्म तथा राजनीति के केन्द्र थे। वे सरल सुबोध एवं तार्किक शैली में अपने विषय का प्रतिपादन करने वाले उच्चकोटि के निर्भीक-वक्ता थे। उनके भाषण मुर्दों में जान फूंकने की सामर्थ्य रखते थे।

पं० नरेन्द्र ने इत्तेहादुल मुसलमान नेता नवाब बहादुर यारजंग द्वारा चलाए जा रहे 'तबलीक के कार्यों को रोककर 'शुद्धिचक्र' का प्रवर्त्तन किया था। बहादुर यारजंग प्रलोभनों तथा आतंक के द्वारा हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए जहाँ-जहाँ जाते, वहीं-वहीं पं० नरेन्द्र भी अपने साथियों को लेकर पहुंच जाते और बहादुर यारजंग के कारनामों को मिट्टी में मिला देते। पं० जी के इन कार्यों को देखकर निजाम की हकूमत परेशान हो गई और धर्मान्ध मुसलमान घबरा उठे। पं० जी के भाषणों पर प्रतिबन्ध लगाए गए। पं० जी को अनेक बार जेल भी भेजा गया। उनके ऊपर अमानुषिक अत्याचार किए गए। एक बार पं० जी को मन्ननूर जेल भी भेजा गया। इस जेल को हैदराबाद राज्य का अण्डमान (काला पानी जेल) कहा जाता था। परन्तु पं० जी एक वर्ष पांच मास और सात दिन के इस कारावास के दौरान भी अपने पत्रों के द्वारा देश के आर्यजनों को अपने प्रेरक सन्देश देते रहे।

1945 में गुलबर्गा आर्य सम्मेलन के अवसर पर दक्षिण केसरी वीर विनायक राव और पं० नरेन्द्र को अत्याचारी पुलिस अधिकारी पकड़ कर ले गए जहाँ पर उनके ऊपर इतने अत्याचार किए गए कि उनके पैरों की हड्डियाँ बेकार हो गयीं।

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह आर्यसमाज के गौरवमय इतिहास और विजय का प्रतीक है इस आन्दोलन के संचालन में पं० जी की विशेष भूमिका रही है।

पं० नरेन्द्र में राणाप्रताप जैसी देशभक्ति, वीर शिवाजी जैसी निर्भीकता, पंजाब केसरी जैसी वक्तृता शक्ति, बन्दा वैरागी जैसी कष्ट सहिष्णुता थी जो आर्य-समाज के उद्देश्यों को सतत् अग्रसर करती रही। पं० जी के जीवन में अनेक बाधाएं आयीं, परन्तु वे बाधाएँ उन्हें ऊंचा उठाने वाली प्रस्तर शिलाओं के रूप में सहायक ही बनीं। जीवन एक पर्वतारोहण है और शिखर पर पहुँचना ही उसका ध्येय है। यही सत्य आध्यात्मिक जगत में भी है। पं० जी इसी ऊर्ध्वगामी पगडण्डी के सफल पथिक थे।

—डा० धर्मपाल
(आर्यसन्देश. 19-8-90)

ईश्वर में इच्छा नहीं ईक्षण।

(प्रश्न) ईश्वर में इच्छा है वा नहीं ? (उत्तर) वैसी इच्छा नहीं, क्योंकि इच्छा भी अप्राप्त, उत्तम और जिसकी प्राप्ति से सुख विशेष होवे उसकी होती है, तो ईश्वर में इच्छा कैसे हो सके। न उसे कोई अप्राप्त पदार्थ, न कोई उससे उत्तम, और पूर्ण सुख युक्त होने से सुख की अभिलाषा भी नहीं है, इसलिए ईश्वर में इच्छा का तो संभव नहीं किन्तु ईक्षण है अर्थात् सब प्रकार की विद्या का दर्शन और सब सृष्टि का करना कहाता है वह ईक्षण है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

परमेश्वर न रागी न विरक्त।

(प्रश्न) परमेश्वर रागी है वा विरक्त ? (उत्तर) दोनों नहीं। क्योंकि राग अपने से भिन्न उत्तम पदार्थों में होता है, सो परमेश्वर से कोई पदार्थ पृथक् वा उत्तम नहीं, इसलिये उसमें राग का सम्भव नहीं। और जो प्राप्त को छोड़ देवे उनको विरक्त कहते हैं। ईश्वर व्यापक होने से किसी पदार्थ को छोड़ ही नहीं सकता, इसलिये विरक्त भी नहीं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पं० रामचन्द्र देहलवी

किसी भी संस्था को इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में उसके मानव कल्याण हेतु किए गये कार्यों को सम्पन्न करने वाले महापुरुषों की चारित्रिक विशेषताओं का विशेष योगदान होता है। इतिहास केवल उन्हीं को याद रखता है जो महान कार्य करते हैं। महान कार्य वे हैं जो धर्म, जाति, राष्ट्र और मानवमात्र के उत्थान के लिए किए गये हों। आप किसी भी देश धर्म अथवा संस्कृति का इतिहास उठाकर देख लीजिए, सम्मान, यश और श्रद्धा उसी को मिली जिसने किसी का बुरा नहीं किया, जो दीन की राह पर चला, जो सच्चाई के मार्ग पर चला, जो धर्म के मार्ग पर चला।

आर्यसमाज का भी अपना गौरवपूर्ण इतिहास है। महर्षि दयानन्द सरस्वती का सभी क्षेत्रों में योगदान अप्रतिम है। आर्यसमाज ने जिन धर्मप्रेमी और देशप्रेमी महापुरुषों को जन्म दिया उनमें पण्डित गुरुदत्त, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज लाला लाजपतराय, महात्मा नारायण स्वामी, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के नाम अग्रपंक्ति में आते हैं। इसी चमकते सितारों की पंक्ति में एक और जाज्वल्यमान नक्षत्र का प्रभास पूरे समाज को चकाचौंध करने वाला हुआ है। वह देदीप्यमान और जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं—पण्डित रामचन्द्र देहलवी। यह वह महामानव था जिससे नृशंस और बर्बर निजामशाही भी थर्राती थी तथा जिससे निजात पाने के लिए निजाम सरकार ने उस ओजस्वी, तेजस्वी, सत्यनिष्ठ, धार्मिक, वैदिक विद्वान को हैदराबाद से निर्वासित कर दिया था।

पं० रामचन्द्र देहलवी ने दिल्ली को अपनी कार्यस्थली बनाकर गौरवान्वित किया। देश और धर्म से प्रेम तथा श्रद्धा रखते हुए, युवावस्था में ही पण्डित जी ने आर्यसमाज की सेवा का व्रत धारण करके चौक फव्वारे पर वेद सन्देश सुनाने का कार्य प्रारम्भ किया। उनके इस सुकृत्य की गूंज दूर-दूर तक सुनाई देने लगी तथा पं० रामचन्द्र देहलवी का नाम जन-जन की जिह्वा पर हो गया।

वे आजीवन आर्यसमाज के विश्वव्यापी, सर्वहितकारी नियमों तथा उच्च सिद्धान्तों-मन्तव्यों को सर्वत्र विकीर्ण करने में सतत् क्रियाशील रहे। उनकी विद्वत्ता, योग्यता, कर्तव्य निष्ठा, सच्चरित्रता अप्रतिम थी। इसी लिए वे हिमालय से लेकर सुदूर हैदराबाद तक सभी आर्यजनों के दिल में घर कर गए। उनके वेद उपनिषदों के गम्भीर विषयों को सरल सुललित शैली में सुनने के लिए भीड़ उमड़ा करती थी।

उन्होंने अन्य धर्मों-सम्प्रदायों के ग्रन्थों का भी गम्भीर अध्याय एवं तर्कपूर्ण विश्लेषण किया हुआ था। कुरान के तो पण्डित जी सर्वमान्य विद्वान थे। उनके भाषणों में तुलनात्मक तार्किकता होती थी। जिसके कारण वे कभी किसी शास्त्रार्थ में हिले तक नहीं, बल्कि अदम्य चट्टान की भांति स्थिर सभी प्रतिवादों को सहन करने तथा धीर गम्भीर वाणी में सशक्त प्रत्युत्तर देने में सक्षम रहे।

पण्डित जी सर्वप्रथम 1929 में हैदराबाद गये थे। यह वह समय था जब हैदराबाद के मुस्लिम शासकों ने हिन्दू जनता को हर प्रकार के धार्मिक प्रतिबन्धों में जकड़कर उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता से वंचित कर रखा था। हिन्दू समाज को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।

उस समय पण्डित जी के पाँच विद्वत्ता एवं तर्क से ओतप्रोत भाषण रघुनाथ बाग सुल्तान बाजार में हुए। लोगों में जागृति आई एवं सत्यासत्य विवेचन की क्षमता उत्पन्न हो गई। यही वह समय था जब "सिद्दीक दीनदार" साम्प्रदायिकता का खुला प्रचार करके, जनता में हिन्दू धर्म के प्रति भ्रम फैला रहा था। पंडित जी ने सिद्दीक दीनदार और उनके सहयोगियों को ऐसे मुंहतोड़ जवाब दिए कि वे बगलें झांकने लगे। पंडित जी की हैदराबाद में चारों ओर धूम मच गई। जनता उनकी वक्तृता से ऐसी प्रभावित हुई कि उन्हें हैदराबाद से बार-बार निमंत्रण मिले और उन्होंने आर्यसमाज के सिद्धान्तों का सशक्त प्रचार किया। हिन्दू जनता में उल्लास का वातावरण बना और सिद्दीक दीनदार के समर्थक पस्त हो गए।

पंडित जी को इस धर्म परायणता और कर्तव्य परायणता के कारण निजाम सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा। 1933 में पं० रामचन्द्र देहलवी पर बीदर में अभियोग चलाने का कानूनी नोटिस दिया गया और उन्हें हेलीखेड़ में एक भाषण के आधार पर असत्य आरोप लगाकर, बीदर के न्यायाधीस के सम्मुख अपना स्पष्टीकरण देने के लिए समन भेजा गया।

सार्वदेशिक सभा के प्रधान महात्मा नारायण स्वामी के अनुरोध पर, तथा तत्कालीन राजनीतिक विभाग के मन्त्री के प्रयत्नों के फलस्वरूप अभियोग तो हटा लिया गया, परन्तु उन्हें आदेश दिया गया कि वे तत्काल हैदराबाद से बाहर चले जाएँ।

पं० रामचन्द्र जी देहलवी के कई शास्त्रार्थ आर्यसमाज के इतिहास में याद किए जाएँगे। 'अहमद जमायत' के साथ जो शास्त्रार्थ हुआ था, वह ऐतिहासिक घटना थी। पं० जी की व्याख्यान शैली अतिरोचक थी, वे अपने पाठकों में जिज्ञासा एवं उत्सुकता का भाव भर दिया करते थे। पं० जी अद्भुत विद्धता एवं पण्डित के धनी होने पर गम्भीरता से आकृत्त नहीं थे। वे बहुत ही मिलनसार एवं हंसमुख प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। हैदराबाद विजय पर्व के अवसर पर वैदिक धर्म के प्रति उनकी सेवाओं के प्रति श्रद्धावनत सुमनाञ्जलि।

—डॉ० धर्मपाल

(आर्यसन्देश, 19-8-90)

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

इतिहास वे बनाते हैं जिनके मार्ग में बाधाएं आती हैं और जो उन्हें पार कर लेते हैं। पर्वत उपत्यका पर चढ़ने वाले जानते हैं कि उन्हें चोटी पर पहुंचने के लिए एक के बाद एक पहाड़ियों पर चढ़ना पड़ता है तथा कई बार नीचे घाटी में उतर कर पुनः ऊपर चढ़ना होता है। जिनकी जिन्दगी सरल सपाट है, वे क्या इतिहास सृजन करेंगे ? वह पथ क्या, पथिक कुशलता क्या, यदि पथ में बिखरे शूल न हों वह नाविक क्या, नैव्य कुशलता क्या यदि धाराएं प्रतिकूल न हों।

ऐसे ही इतिहास सृष्टा थे 'पं. चन्द्रभानु जी 'सिद्धान्त भूषण'। पं. जी को 17 सितम्बर 1932 को एक आदेश द्वारा निजाम राज्य हैदराबाद से निर्वासित किया गया था। आर्यसमाजियों के शिष्ट मण्डल तत्कालिक अधिकारियों से मिले कि पं. जी तो सौम्य एवं मिलन सार धर्म प्रचारक हैं, पर उनकी बातों पर कोई ध्यान न दिया गया। इसका कारण स्पष्ट था कि प. जी के भाषणों एवं प्रचार से निजाम शाही के उद्देश्यों में व्यवधान पड़ता था। उनका निष्कासन स्वयं निजाम की इच्छा के अनुसार हुआ था।

यह निष्कासन आर्यों के ओज की वैजयन्ती 'आर्य सत्याग्रह हैदराबाद' से पूर्व की है। वस्तुतः निजामशाही का हिन्दुओं पर हिन्दुओं की पूजा पद्धति अत्याचार एवं दमन का दौर इतना बढ़ गया था कि आर्यसमाज को ऐतिहासिक सत्याग्रह करना पड़ा।

पं. जी इस सारे दौर पर सक्रिय सहभागी थे। वे प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी पं. रामचन्द्र देहलवी के निर्देश पर' अध्ययन को बीच में छोड़कर, वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार की भरपूर उमंगों के साथ, अनेक कठिनाईयों को पार करते हुए, हैदराबाद पहुंचे थे।

पं. जी के आकर्षक व्यक्तित्व, सौम्य, हंसमुख, शिष्ट स्वभाव का जनता पर विशेष प्रभाव पड़ता था। अपनी विद्वता कर्मकाण्ड प्रवीणता, ओजस्वी मधुर वाणी और संयत जीवन के द्वारा उन्होंने आर्यसमाज एवं वैदिक धर्म के कार्यों को आगे बढ़ाया। बस यही कारण था कि वे निजाम की आंखों का कांटा बन गए और उनके निर्वासन के आदेश हुए।

हैदराबाद में विभिन्न स्थानों पर घूमते हुए उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था, अछूतोद्धार, गायत्री मन्त्र की महत्ता, मृत्यु मीमांसा, अद्वैतवाद का खण्डन, आर्यसमाज

की विज्ञान सम्मतता, अवतारवाद का खण्डन आदि विषयों पर तर्क पूर्ण भाषण दिए। इन्हीं भाषणों के कारण गुप्तचर सदैव उनके पीछे रहते थे।

पं. जी का संकल्प था कि वे हैदराबाद में ही वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार में अपना जीवन लगा देंगे पर निजाम सरकार को यह मन्जूर न हुआ। इससे मुस्लिम प्रचारकों के मन्सूबे ध्वस्त हो रहे थे उन पर राजनैतिक क्रान्तिकारियों का सहयोगी होने का अभियोग लगाकर 30 सितम्बर 1932 को रियासत हैदराबाद से निर्वासित कर दिया। इस सम्बन्ध में 'मुशीरे दक्कन' में प्रकाशित समाचार द्रष्टव्य है--

मुशीरे दक्कन, 13, आबान (मुस्लिम तिथि), 19 सितम्बर 1932, हैदराबाद 13 आबान—सुना गया कि आर्यसमाजी मुबल्लिग (प्रचारक) चन्द्रभानु जी का उनकी अपनी सभा से (राजनैतिक) सरगर्मियों की बिना पर (गतिविधियों के कारण) मुमालिक महसूसा सरकारेआली (निजाम राज्य) से अखराज अमल में आया है। (निर्वासित करने का आदेश दिया गया है।)

यह आदेश कितना खोखला और दुराग्रह पूर्ण था, इससे सभी आर्यसमाजी भावनात्मक जुड़े हैं। तत्कालीन सार्वदेशिक सभा के मन्त्री प्रोफेसर सुधारक ने उस समय लिखा था कि निजाम रियासत का पहला कहर पं. चन्द्रभानु जी पर टूटा क्योंकि वे सत्य धर्म के प्रचारक थे जो उस सरकार की सहन-सीमा से बाहर था।

आर्यसमाज और वेदिक धर्म के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने वाले तथा अनेक कष्ट सहकर भी आर्यसमाज के कार्य को आगे बढ़ाने वाले, उस वीर आर्य पुरुष को हमारी श्रद्धांजलि।

—डा. धर्मपाल
(आर्यसन्देश, 19-8-90)

परमेश्वर जन्म-मरण रहित है।

परमेश्वर का जन्म-मरण और शरीर धारण रहित वेदों में कहा है। तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जो आकाशवत् सर्वत्र व्यापक अनन्त और सुख दुःख दृष्यादि गुण रहित है वह एक छोटे से वीर्, गर्भाशय और शरीर में क्यों कर आ सकता है? आता जाता वह है कि जो एक देशीय हो। और जो अचल अदृश्य जिसके बिना एक परमाणु भी खाली नहीं है, उसका अवतर कहना जानो बन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उसके पौत्र के दर्शन करने की बात कहना है!

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पं० अमरनाथ प्रेमी

आर्य पत्रों में यह संक्षिप्त सूचना पढ़कर बड़ा दुःख हुआ कि जून मास के अन्तिम सप्ताह में श्री पण्डित अमरनाथ जी 'प्रेमी' चल बसे। वर्तमान पीढ़ी को तो यह पता ही नहीं कि अमरनाथ जी प्रेमी कौन थे ? वह कई वर्ष से पक्षाघात के रोग से खाट पर पड़े हुए थे।

श्री अमरनाथ जी 'प्रेमी' अपने समय के आर्यसमाज के सबसे लोकप्रिय भजनोपदेशक में से एक थे। कलकत्ता से लेकर श्रीनगर और अमृतसर तक उनकी बड़ी मांग थी। कोई भी बड़ा समाज ऐसा न था जो प्रेमी जी को अपने उत्सव पर बुलवा कर अपने को गौरवान्वित न समझता हो। आर्यसमाज दीवान हाल, आर्यसमाज करोलबाग और आर्यसमाज हनुमान रोड के उत्सव उनके बिना होते ही न थे। गुरुकुल कांगड़ी वार्षिकोत्सव पर उन्हें सुनने के लिए सब उत्सुक होते थे। प्रेमी जी एक अच्छे गायक तो थे ही, आप एक अच्छे कवि भी थे।

उनकी रचनाएं आज भी लोकप्रिय हैं। एक भजन देश-भर में गाया जाता है :

बीहड़ बन में विचर रहा था,
सच्चे शिव का मतवारा।
छोड़ दिया था टंकारा ॥...

यह गीत श्री प्रेमी जी की रचना है। उनके चुने हुए गीतों का एक संग्रह फिर से छपना चाहिए।

श्री प्रेमी जी को श्री पण्डित शान्ति प्रकाश जी, महाशय चिरंजीलाल जी प्रेम, पण्डित मुनीश्वर देव जी, पण्डित शिवकुमार जी शास्त्री, पण्डित हरिदेव जी सिद्धान्त भूषण जैसे बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों के साथ सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त रहा। उन्हें पूज्य स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज, स्वामी आत्मानन्द जी महाराज, पं. श्री बुद्धदेव जी विद्यालंकार के साथ प्रचार करने का गौरव प्राप्त रहा। वह बहुत स्वाभिमानी उपदेशक थे, परन्तु बड़े विनम्र थे। बड़े स्वच्छता प्रेमी थे। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के जिन उपदेशकों का धोती कुर्ता बड़ा उजला और चमकता दिखाई देता था, आप उनमें से एक थे।

उनमें सेवा-भाव कूट-कूटकर भरा हुआ था। ईसाई लोग अपने मिशनरियों के छोटे-छोटे कार्यों का बड़ा प्रचार करते हैं। और हम इस दिशा में बड़े कंजूस हैं। प्रेमी जी की सेवा की एक घटना मैं यदा-कदा सुनाया करता हूं। मैं कालेज का विद्यार्थी था। महाशय चिरञ्जीलाल जी प्रेम और श्री अमरनाथ प्रेमी लेखरामनगर

कादियां प्रचारार्थ पधारे। उन दिनों वहाँ एक दस वर्ष की आयु का लड़का कहीं से आ टपका। बड़ा गन्दा। गला-सड़ा शरीर। मैले वस्त्र और नाक बहती रहती। मक्खियां उस पर भिनभिनाती रहतीं। देखकर ही जी घबराने लगता।

प्रेमी जी उसे पकड़कर उसे आर्यसमाज मन्दिर में ले आए। प्रेम जी व प्रेमी जी ने उनके गन्दे वस्त्र न जाने कैसे उतारे। उसे अच्छी तरह स्नान कराया। हाथ से नल चलाकर प्रेमी जी ने कई बालटियां जल उस पर डाला। उसकी मैल उतरी तो नाई को बुलवाया। नाई अब भी उसे हाथ लगाने से सुकुचाता था। प्रेमी जी ने उसके बाल आप काटे। उसे नए वस्त्र लेकर पहनाए। अब तो उस लड़के का रूप-रंग ही बदल गया। सब रोग भाग गये। स्वास्थ्य निखरने लगा। वह बोलने लगा। भाग-दौड़ करने लग गया। एक हलवाई ने उसे नौकर रख लिया। वह हलवाई का काम भी सीख गया। उसका नाम महेन्द्र रखा गया। यह नाम सम्भवतः प्रेमी जी ने ही दिया था। वह लड़का अब भी कादियां या आसपास में कहीं रहता होगा। उसे घूमते-फिरते देखकर लोग आर्योपदेशक प्रेमी जी की परोपकार की प्रवृत्ति का स्मरण करते हुए उनकी चिरकाल तक प्रशंसा करते रहे।

उनमें सेवा भाव तो था ही, कृतज्ञता का भी भाव बहुत बड़ा था। एक बार उन्होंने मुझे एक घटना सुनाई। गुरुदासपुर जिला में बहुत बाढ़ आ गई। प्रेमी जी के घर का भी कुछ भाग गिर गया। उन्हें सीमेण्ट कहीं से न मिला। सभा के अगले कार्यक्रमों पर जाना था। अब घर में परिवार के लिए सिर छुपाने का स्थान नहीं तो प्रचार पर कैसे जावें।

आप दीना नगर दयानन्द मठ में गये और पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी से कहा कि मुझे कहीं से कुछ सीमेण्ट दिलवाएं। उस समय मठ में ब्रह्मचारियों के लिए कुछ कमरे बनर हे थे। स्वामी जी ने कहा, "आपको एक दो चार पांच जितने थैले सीमेण्ट चाहिए यहाँ से उठवालें।

प्रेमी जी ने सीमेण्ट ले लिया और स्वामी जी महाराज से पैसे पूछे।

स्वामी जी ने कहा, पैसे किस बात के? यह मठ किसका है? यह तो धर्म का काम है। गृहस्थों के दान से सीमेंट यहाँ आया है। आप भी तो समाज का काम कर रहे हैं। आप प्रचार नहीं करेंगे तो फिर समाज की हानि होगी। इस लिए सीमेंट के पैसे हम नहीं लेंगे।

प्रेमी जी ने मुझे कहा कि मेरे बहुत कहने-सुनने पर भी पूज्य स्वामी जी नहीं माने। बड़ी कृतज्ञता से आपने कहा, "देखो हमारे पूज्य स्वामी जी हम उपदेशकों का कितना ध्यान रखते हैं। स्वामी जी के इस सहयोग से मेरे सारे परिवार पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है।"

'आर्य सन्देश' के पाठक सुनकर प्रसन्न होंगे कि श्री प्रेमी जी अपने पीछे आर्य सन्तान छोड़कर गए हैं। उनका ज्येष्ठ पुत्र प्रिय राजेश भी वैदिक धर्म में पूरी

श्रद्धा रखता है। उसमें भी समाज सेवा का बड़ा भाव है। वह कुछ मास पूर्व देहली के आर्यसमाज नया बांस में रुका था। बड़ा सुशील युवक है।

एक बार आर्यसमाज हनुमान रोड के उत्सव की समाप्ति पर प्रेमी जी एक दो उपदेशकों के साथ रात्रि को बाहर निकले। मैं भी साथ था। यह याद नहीं कि हम लोग किस प्रयोजन से निकले। सड़क के एक मोड़ पर कुछ रुके ही थे कि किसी युवक ने मेरा उपहास उड़ाया। श्री प्रेमी जी ने बड़े मीठे शब्दों में उनको ऐसा झकझोरा कि उसे अपनी भूल पर बहुत पश्चात्ताप हुआ।

उनकी लोकप्रियता के कई दृश्य मेरी आँखों के सामने घूम रहे हैं। आर्य समाज पठानकोट का उत्सव था। सहस्रों की उपस्थिति थी। नवयुवक बहुत आये प्रेमी जी की जब बारी आती तो श्रोता एकदम झूम उठते। युवक तो विशेष रूप से उन्हें ही सुनना चाहते थे। पाश्चात्य शिक्षा पर व्यंग्य करते हुए उन दिनों आर्य भजनोपदेशक निम्न गीत बहुत गाया करते थे :—

कालेज में गुजारा नहीं होता माई लार्ड

कालेज के लड़कों की अनुशासनहीनता पर ही चोट थी और वही इस गीत को सुन-सुनकर आनन्द ले रहे थे। उनमें एक विशेषता यह थी कि वह हलके-फुलके गीत भजन नहीं बोलते थे। उनकी अपनी रचनाओं का स्तर भी अच्छा था और वह प्रायः पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार, कविरत्न प्रकाश जी, ठाकुर उदयसिंह जी व श्री पं० देशराज जी के भजन गाया करते थे।

उनका कण्ठ अच्छा था। अच्छा ही नहीं बहुत अच्छा था। संगीत का अच्छा ज्ञान था। ऋषि दयानन्द जी महाराज के जीवन की बड़ी प्रेरक घटनाएं सुनाया करते थे। उनके व्याख्यान में निरर्थक चुटकले भी कभी नहीं सुने थे।

उनमें एक और बड़ा गुण था कि वह जहाँ कहीं जाते वहाँ आर्य वीर दल, कुमार सभा या आर्य युवक (जो भी वहाँ हो) के आर्य वीरों और आर्य कुमारों से बड़ा स्नेह करते और उन्हें बढ़ा प्रोत्साहन देते थे।

कर्मयोग का अटल नियम टाले नहीं टलता। ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार वह अपने किन्हीं पूर्व कर्मों का फल भोगने के लिए पक्षाघात के गन्दे रोग का शिकार हो गए और कई वर्ष यह दुःख उन्हें भोगना पड़ा। जब कभी कोई आर्य बन्धु उन्हें कुछ सहायता भेजता तो स्नेह व कृतज्ञता से वह बहुत रोते थे। परमात्मा उनकी प्रवृत्ति के अनुसार उन्हें फिर मानव चोला देकर महर्षि के अधूरे कार्य को पूरा करने का अवसर देंगे। हम उस गुण सम्पन्न अपने प्रिय आर्य बन्धु और उपदेशक को आर्य जगत की ओर से श्रद्धांजलि भेंट करते हैं।

—प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु
(आर्यसन्देश, 26-8-90)

पं० शिवकुमार शास्त्री

पं० शिवकुमार शास्त्री अब हमारे बीच में नहीं हैं। यह सोचना ही कितना हृदय विदारक है। संवेदनशील व्यक्ति इस कष्ट को सहन करने की सोचने में भी असमर्थ है। पं० शिवकुमार शास्त्री आधीशताब्दी से भी अधिक समय तक वैदिक धर्म एवं आर्य समाज का प्रचार करते रहे, राष्ट्र को एक नई दिशा देते रहे, आर्य जगत के उच्च पदों पर रहे। संकट के क्षणों में हम लोग उनके पास उनके विचार जानने के लिए उनका सत्परामर्श लेने के लिए जाते रहे हैं।

पं० शिवकुमार शास्त्री का व्यक्तित्व निश्छलता, निर्मलता एवं आडम्बर हीनता से ओतप्रोत था। वे अपने से मिलने वाले को ऐसा महसूस ही नहीं होने देते थे कि वह व्यक्ति किसी भी प्रकार उनसे छोटा है। वे सहज मुस्कान के साथ, धीरे-धीरे सरल शब्दों में बात करते थे। उनकी विशेषता थी कि गम्भीर से गम्भीर परिस्थितियों में भी वे गम्भीर न होते थे। उनके मुखमण्डल पर सहज सरल मुस्कान रहती थी। एक बार दीवान हाल में राष्ट्रीय नेताओं को आमन्त्रित किया गया था। वर्षा घनघोर थी। वे भीग गए थे। उन्होंने एक धोती लपेट ली और सहज बने रहे। उनका भाषण भी हुआ और सदैव की भांति सराहा भी गया। ऐसे सहज प्रकृति के स्वामी पंडित जी थे।

पं० शिवकुमार शास्त्री लोकसभा के दस वर्षों तक सदस्य रहे। वे अपने क्षेत्र के लोगों की आवश्यकताओं के लिए तो आवाज उठाते ही रहे, परन्तु उन्होंने मानवता के लिए भी सदैव आवाज को बुलन्द किया। उनके भाषण सदैव मानवता के बिन्दुओं पर आधृत होते थे। वे वैदिक भावना से ओत-प्रोत थे। छुद्र राजनीति तो उन्हें छू भी नहीं सकती थी।

किसी भी प्रकार के पदों की प्राप्ति की लालसा उन्हें कभी नहीं रही। आर्य समाज में वे आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान रहे, सार्वदेशिक सभा के अन्तरंग सदस्य तथा अन्य विभिन्न समितियों के सदस्य रहे, अनेक सार्वजनिक न्यासों के भी वे सदस्य रहे, परन्तु वे कभी भी इन पदों के पीछे नहीं भागे। पद चलकर उनके पास आए। वे सदा ही इस पंक से ऊपर बने रहे। उनसे संस्थाएं सुशोभित हुआ करती थीं।

दिल्ली की आर्य समाजों के मंच की तो वे शोभा थे। प्रत्येक आर्य समाज उन्हें आमन्त्रित करती थी। किसी भी सभा के, कोई भी उत्सव उनके बिना पूरे न होते

थे। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा आयोजित महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समापन समारोह में महामहिम राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह जी आए थे। उनसे आग्रह किया गया कि वे राष्ट्रपति के आने तक बोलते रहें, ताकि अगले वक्ता के भाषण के बीच व्यवधान न पड़े और वे धारा प्रवाह, अपनी चिरपरिचित सरस शैली में बोलते रहे। गतवर्ष तालकटोरा स्टेडियम में महामहिम उप राष्ट्रपति डा० शंकरदयाल शर्मा आए थे। पं० जी भी आमन्त्रित थे, पर उनका स्वास्थ्य ठीक न था। वे नहीं आए। सायंकाल उन्होंने सभा प्रधान डा० धर्मपाल जी को उत्सव की सफलता पर बधाई देते हुए कहा कि मैं आज संस्कृति के सुयोग्य साधक डा० शंकरदयाल शर्मा के विचार साक्षात् सुनने से वंचित रह गया। ऐसे सरल थे पं० शिवकुमार जी शास्त्री।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा तथा दिल्ली की अनेक आर्यसमाजों तथा दिल्ली से बाहर की संस्थाओं में पं० शिवकुमार शास्त्री का अभिनन्दन एवं सम्मान उनके जीवनकाल में ही किया था। उनके आगमन से ही ये सभाएं, संस्थाएं स्वयं गौरवान्वित हुई थीं। तभी से दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा का निश्चय था कि पं० जी के सम्मान में आर्यसन्देश का एक विशेषांक प्रकाशित किया जाए। यह संयोग की बात है कि यह अंक उनके आहत महोत्सव के अवसर पर तथा आर्य समाज के संस्थापक, युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती के निर्वाण दिवस के अवसर पर पाठकों के हाथों में आ रहा है।

अन्त में, मैं सभी आर्य नेताओं, विद्वान-लेखकों तथा अपने सहयोगियों का धन्यवाद करना अपना पुनीत कर्त्तव्य मानता हूं।

—मूल चन्द गुप्त

(आर्यसन्देश, 21-10-90)

ऋषि दयानन्द के हृदय में यह प्रबल इच्छा और उत्साह था कि सारे देश में एक ईश्वर पूजा प्रचलित हो, ईश्वरीय ज्ञान वेद का प्रचार हो, एक आर्य जाति संगठित हो और एक राष्ट्रभाषा हिन्दी सम्पूर्ण देश की भाषा बने।

घोरतम प्रतिकूलताओं के होने, घोरतम प्रलोभनों के दिये जाने और समय-समय पर शत्रुओं के हाथों अपने प्राण नाश के यत्न किये जाने पर भी वे बड़ी निर्भीकता से राष्ट्र जागरण और मृतप्राय: हिन्दू जाति को पुनर्जीवित करने में जुटे रहे।

उस आलौकिक महापुरुष ने अपने पश्चात् भी यह कार्य सुचारु रूप से सदा चलता रहे यह सोचकर अपने प्रतिनिधि स्वरूप शक्तिशाली आर्य समाज की विशुद्ध प्रजातन्त्रात्मक ढ़ग पर स्थापना की जिसके दस नियम बनाये।

मेरे पूज्य पं० भीमसेन जी विद्यालंकार

22 जुलाई के अङ्क में श्रीमान् डा० धर्मपाल जी का पं० भीमसेन जी पर लेख पढ़ा। लेख गागर में सागर के समान है। लेख की एक एक पंक्ति पढ़ता गया और मेरी स्मृतियों में एक बाढ़ सी आ गई। श्री डा० धर्मपाल जी ने तो सब कुछ पढ़ सुनकर लिखा है और मैं उन सौभाग्यशाली आर्यों में से एक हूं जिसको इस यशस्वी आर्य साहित्यकार, समाजसेवी व राष्ट्रसेवक से भरपूर स्नेह व प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा। श्री पं० जी को बहुत निकट से देखने का सौभाग्य प्राप्त रहा। उनके मार्गदर्शन में एक आर्यवीर के रूप में आर्य समाज की सेवा का अवसर प्राप्त हुआ। अब समझ में नहीं आ रहा कि क्या लिखूं और क्या क्या छोड़ूं।

मेरे मन में यह विचार भी करवटें लेता रहा कि लाला विशनदास जी पर भी कभी विस्तार से लिखूं। श्री ला० विशनदास जी (जैसा कि डा० धर्मपाल जी ने संकेत दिया है) कोई साधारण व्यक्ति न थे। वे आर्यसमाज के एक तपःपूत थे। पुराने आर्य पत्रों में प्रतिमास दो तीन बार उनकी चर्चा होती ही थी। अच्छा उन पर कभी फिर कुछ लिखेंगे। डा० धर्मपाल जी ने पण्डित भीमसेन जी के जन्मस्थान श्री हरगोविन्दपुर की चर्चा भी की है। श्री हरगोविन्दपुर व्यास नदी के तट पर एक बड़ा प्रसिद्ध कस्बा है। अब तो उग्रवाद ने इसकी सब रौनक खा ली है। यहां का आर्यसमाज कभी भारत प्रसिद्ध था। आर्यसमाज का कोई विरला ही विद्वान् व नेता होगा जिसने पण्डित जी के जन्म स्थान की यात्रा न की हो। रक्तसाक्षी पं० लेखराम जी, स्वामी दर्शनानन्द जी, मास्टर आत्माराम जी, महात्मा मुंशीराम जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी और श्री स्वामी वेदानन्द जी सभी कई कई बार वहां प्रचारार्थ गये। हमारे इस समय के वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध तपस्वी पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज व प० शान्ति प्रकाश जी भी यहां कई बार प्रचारार्थ गये हैं। मेरी पीढ़ी के आर्यों व मेरे बाद की पीढ़ी के आर्य वीरों में केवल मुझे ही श्री हरगोविन्दपुर में प्रचार करने का सौभाग्य प्राप्त है। मैं कालेज में पढ़ता था जब वहां प्रचार करने गया था। यह 1950 ई० की बात होगी।

श्री पं० भीमसेन जी के जीवन में धर्म की रंगत थी। इसका परिचय उनके जीवन में पग पग पर लोगों को मिलता रहा। सन् 1955 में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का वार्षिक अधिवेशन आर्य स्कूल लुधियाना में हुआ था। पूज्यवाद स्वामी आत्मानन्द जी उसमें सर्व सम्मति से प्रधान चुने गये। मन्त्री पद के लिए चुनाव हुआ। एक मत के बहुमत से श्री पं० भीमसेन जी मन्त्री चुने गये। वीरेन्द्र जी व

उनके पक्ष के लोगों से अपनी पराजय सही न गई। उन्होंने दोबारा मतदान की मांग की। भोजन उपरान्त फिर मतदान हुआ। श्री वीरेन्द्र जी एक मत से जीत गये। कोई सज्जन तब तक जा चुके होंगे। श्री पं० भीमसेन जी को अपनी हार से तनिक भी दुःख न हुआ। हमने उनके माथे पर रोष, मलिनता, दुःख व शोक की कोई रेखा न देखी। वे खड़े हुए और पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी को अपना व अपने साथियों का पूरा समर्थन देने का आश्वासन दिया। यही आर्यत्व है।

सन् 1958 में विजयदशमी के दिनों में गुरुकुल कांगड़ी का वार्षिकोत्सव रखा गया तब मुझे तीन बार श्रद्धेय आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेद तीर्थ की कुटिया पर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने तब श्री पं. भीमसेन जी के आत्मा की विमलता की एक घटना सुनाई। अपनी जवानी के दिनों में पण्डित जी ने सामाजिक कार्य के लिए आचार्य जी को एक पत्र लिखा। पत्र पर जो टिकट लगाए गये उनमें एक टिकट ऐसा था जो पहले किसी पत्र से उतार कर इस पत्र पर लगाया गया था। आचार्य नरदेव जी शास्त्री ने टिकटों को देखकर ऐसा जान लिया और आचार्य जी का यह अनुमान ठीक था। आचार्य जी ने नवयुवक भीमसेन को लिखा कि तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। हम आर्यों के व्यवहार में दोष नहीं होना चाहिये।

आचार्य नरदेव जी ने कहा कि लौटती डाक से नवयुवक भीमसेन विद्यालंकार का पत्र आया। अपनी भूल पर खेद प्रकट करते हुए भविष्य में ऐसा कभी न करने का आश्वासन भी दिलाया। आचार्य जी पर भीमसेन स्नातक के मन की इस निर्मलता की गहरी छाप पड़ी। यदि नवयुवक भीमसेन हठ व दुराग्रह से अपनी भूल न मानते तो आचार्य श्री नरदेव जी के पास ऐसा कौन सा **Legal point** वैधानिक तर्क था जो उन्हें दोषी ठहरा लेते। आर्यों। आत्मोन्नति इसे ही कहते हैं। यही कल्याण मार्ग है।

एक बार किसी सामाजिक विषय पर 'आर्य मुसाफिर' साप्ताहिक में पक्ष विपक्ष में कुछ लेख छपने लगे। यह आर्यसमाज का बड़ा लोकप्रिय व उच्चस्तरीय पत्र था। श्री पं. भीमसेन जी तब पंजाब सभा के मन्त्री थे। आपने भी इसमें अपना लेख दिया। पण्डित जी के लेख पर पूज्य श्री स्वामी स्वतन्त्रता नन्द जी ने एक लेख लिखा और उसका आरम्भ इन शब्दों में होता है, सभा मन्त्री पं. भीमसेन जी के लेख में ऐसा छपा है……।"

अगले सप्ताह पण्डित जी का फिर लेख आ गया कि स्वामी जी ने यह कैसे लिख दिया कि यह सभा मन्त्री का लेख था? यह तो मेरे व्यक्तिगत विचार थे।

अगले सप्ताह फिर स्वामी जी का लेख आ गया कि मैंने इसे सभा मन्त्री जी का लेख समझा क्योंकि यह उसी पृष्ठ पर छपा है जिस पर प्रायः सभा मन्त्री जी के लेख छपते रहते हैं।

लेखों के इस आदान प्रदान में श्री पं. भीमसेन जी ने पूज्य स्वामी जी के प्रति पूरी श्रद्धा, नम्रता व आदर का प्रकाश किया। जब पं. भीमसेन जी ने लिख दिया कि

यह उनके व्यक्तिगत विचार थे तो पूज्य श्री स्वामी जी ने भी झट से इस बात पर खेद प्रकट कर दिया कि मेरी भूल थी जो मैं इस लेख को सभा मन्त्री जी के विचार समझा। ये हैं बड़ों की बड़ी बातें।

मुझे वर्ष का तो ठीक ठीक ध्यान नहीं सम्भवत: यह 1960-61 की बात होगी। इतना तो निश्चित याद है कि यह घटना उस समय की है जब आचार्य श्री कृष्ण जी (श्री युत स्वामी दीक्षानन्द जी) के पिता जी का भटिण्डा में निधन हुआ था। आर्यसमाज भटिण्डा में गुरुकुल भटिण्डा विषयक एक बैठक बुलाई गई। सभा की ओर से पं. भीमसेन जी वहां पहुचे। आसपास की समाजों के प्रतिनिधि बुलाए गये। मुझे स्वर्गीय महाशय निहालचन्द जी रामां वाले वहाँ ले गये। मैं केवल पं. भीमसेन जी के दर्शन करने के लिए ही समाज मन्दिर में गया था। वहाँ जाकर पण्डित जी से मिलकर एक ओर बैठ गया श्री पं. भीमसेन जी ने कहा, "आप अलग क्यों बैठ गये ?"

मैंने कहा, "मैं बैठक में आमन्त्रित नहीं हूँ।"

सौम्य स्वभाव के पण्डित जी बोले, "वाह ! यह क्या कहा आपने ? क्या आप आर्य प्रतिनिधि सभा का अंग नहीं ? आप जैसे आर्य युवकों के बिना सभा कैसे चलेगी ?" पंडित जी के इन प्यार भरे शब्दों ने मुझ पर उनके बड़प्पन की अमिट छाप लगा दी।

वे कितने भोले थे इसका पता इस बात से लगता है कि हुतात्मा भगतसिंह व भगवती चरण वर्मा जैसे क्रान्तिवीरों के इस गुरु को यदि दो व्यक्तियों की साक्षी डालकर मनोविनोद से ही कोई कह दे कि पण्डित जी आपने दो दिन पूर्व जो दस रुपये लिए थे, वे लौटा दें तो वे मान लेते थे कि हो सकता है इन्होंने दिये हों, मैं ही भूल गया हूँ। सरलता भी महापुरुषों का एक लक्षण है।

देहली से सम्बन्धित मेरा एक संस्मरण मुझे कभी नहीं भूलेगा। जब गुरु द्वारा सिग्रेट केस बनाकर मुझे अमानुषिक यातनायें देकर मेरी एक-एक हड्डी तोड़ दी गई थी तो समस्त आर्य जगत् में इससे एक करन्ट सी लगी थी। मेरी यह पेट पिटाई के बाद मुझ पर एक लम्बा अभियोग चलाया गया। सरकार एफ. आई. आर. प्रथम सूचना रिपोर्ट ही न्यायालय में पेश न कर सकी। आर्यसमाज के इतिहास में ऐसा कोई दूसरा अभियोग नहीं चला जिसमें इतने लम्बे समय तक एफ. आई. आर. ही पुलिस ने पेश न की हो।

मेरे साथ कुछ और बंधु भी फंसाए गए थे। मुख्य निशाना मुझे बनाया गया। कुछ मास के पश्चात, अमृतसर के हमारे दो आर्य मित्रों को भी छोड़ दिया गया। अमृतसर के लक्ष्मणसर समाज के कुछ सज्जन प्रत्येक पेशी पर न्यायालय में आया करते थे, इससे हमारा मन वहाँ लगा रहता था। जब इन दो मित्रों को छोड़ दिया गया तो कादियां के एक अभियुक्त ने मुझे तीखे व्यंग्य से कहा, "देखना अगली पेशी पर अब तुम्हारा कोई भी आर्यसमाजी नहीं आएगा।"

और यह बात सच निकली। उन्होंने मुझे कहा, "देख लिया न, हमने ठीक ही तो कहा था।"

मैंने कहा, "कोई बात नहीं। धर्म के कामों में उपेक्षा भी सहनी पड़ती है!"

मैंने आर्य जगत् साप्ताहिक में यह सारी कहानी लिख दी और यह भी लिखा कि मेरी तो कोई बात नहीं, मैं सब कुछ सह लूंगा परन्तु——।

श्री पं० भीमसेन जी ने मेरा यह नोट आर्य जगत् में पढ़ा और मुझे देहली में रघुमल कन्या पाठशाला में सभा के वार्षिक अधिवेशन में (मुझे आर्य भाइयों ने अभियोग की कहानी सुनने के लिए घेर रखा था) मेरे पीछे आकर प्यार से पुकार कर कहा, "जिज्ञासु जी आप तो आर्यसमाज के जीवित शहीद हैं, आपने अमृतसर के कुछ भाइयों के न्यायालय में न पहुंचने से कैसे यह समझ लिया कि आप अकेले हैं। सारा आर्य जगत् आपके पीछे है।

पाठक क्षमा करेंगे कि मुझे आत्म श्लाघा के ये कुछ शब्द लिखने पड़े हैं परन्तु ये शब्द उस कर्मवीर उस धर्मवीर और यशस्वी आर्य नेता के विमल चरित्र पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। मुझे भी तब दुखी हृदय से पत्रिका में लिखना पड़ा था। इससे आर्यसमाज की छवि धूमिल होती थी। उसके पश्चात् पुन: पूर्ववत आर्यसमाज लक्ष्मणसर अमृतसर के कुछ आर्य पुरुष मेरी पेशी पर कोर्ट में आने लग गये! मेरा विशेष सम्बन्ध इसी समाज से रहा है। वैसे वहां की सब समाजें मुझे जानती थी परन्तु लक्ष्मणसर वालों की मुझ से विशेष आत्मीयता थी।

पं० भीमसेन जी एक प्रख्यात पत्रकार व हिन्दी साहित्य सम्मेलन के एक प्रमुख कर्णधार थे, यह तो श्री डा० धर्मपाल जी ने लिख दिया परन्तु पण्डित जी ने कई पुस्तकें लिखी भी और लाला लाजपतराय जी की आत्म कथा का हिन्दी अनुवाद भी किया। उनके द्वारा लिखित वीर मराठे पुस्तक के न जाने राजपाल एण्ड सन्स ने कितने संस्करण छापे। उस युग के हिन्दी पण्डित युवकों में उत्तर भारत में कोई बिरला ही युवक होगा जिसने यह पुस्तक न पढ़ी हो।

मैंने अपनी उठती जवानी में उनका यह बड़प्पन देखा है कि जब कभी अम्बाला के किसी आर्यसमाज के उत्सव पर मैं जाता था (तब मैं अम्बाला सब समाजों के उत्सवों पर जाता रहा) तो मेरे जैसे अनुभवहीन युवक का व्याख्यान भी आदि से अन्त तक बड़े ध्यान से सुना करते थे। मैं अपने व्याख्यानों में जब आर्य विद्वानों की पुस्तकों के प्रमाणों की झड़ी लगा देता तो वे गद् गद् हो जाया करते थे। मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नहीं जब उन्होंने आशीर्वाद देते हुए प्यार से दुलार से मेरी पीठ न थपथपाई हो।

—प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु
(आर्यसन्देश, 18-11-90)

स्व. पं० प्रकाशवीर शास्त्री

पं० प्रकाश वीर शास्त्री उन मृदु स्वभाव के लब्ध प्रतिष्ठ व्याख्याताओं में थे जो सदैव ही उत्तेजना रहित शान्त व स्पष्ट वाणी में भाषण करते थे, चाहे वह जन सभा का मंच हो या संसद का सभाकक्ष उनके इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर जनता उन्हें ध्यान व चाव से सुनती थी और वह प्रतिनिधि सभा के उपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान और संसद सदस्य बन सके। संसद में विपक्षी सदस्यों से लेकर प्रधान मंत्री नेहरू तक उन्हें ध्यान व आदर से सुनते व गुनते थे।

जब वह बिजनौर के मुस्लिम बहुल क्षेत्र से हाजी इब्राहीम के कांग्रेस समर्थित पक्ष को हराकर जीते तो उन्हें बधाई देने और पुष्पहार पहिनाने वालों में हाजी जी सर्वप्रथम थे। इतना ही नहीं हाजी जी की सज्जनता देखिए कि उन ने उसी समय शास्त्री जी को अपने साथ चाय पीने का निमंत्रण भी दिया, जिसे शास्त्री जी ने स्वीकार कर लिया। जब शास्त्री जी उनके यहां से चाय पीकर आए तो उनके कुछ सनातनी मित्रों ने व्यंग्य किया कि आप पंडित होकर एक मुसलमान के यहां से चाय पी आए। शास्त्री जी ने बड़ा सटीक उत्तर दिया कि यदि आप इजाजत दें तो हम इनको भी पीकर अपने में हजम कर लें।

बहुत से लोग सरकार और जनता से अपनी जायज और नाजायज मांगों को मिलाकर आवाज उठाते, आन्दोलन करते और धमकी देते रहते हैं, क्योंकि उन्हें उन मांगों के बदले में कुछ भी खोने का डर नहीं रहता। वे माल भी लेना चाहते हैं और उसके बदले में मूल्य भी नहीं देना चाहते है। हर सौदे में यह नीति होनी चाहिए कि पहिले तुम कुछ दो तब उसके बदले में कुछ पाओ भी। जब उनसे मांग के बदले में कुछ त्याग भी करने की बात कही जाती है तो वे मुकर जाते हैं, और कालान्तर में फिर वही मांग उठाते हैं कि जिससे बिना कुछ दिए ही उन्हें सब कुछ मिल जाय।

शास्त्री जी के कुछ विरोधियों ने उन्हें उत्तेजित व बदनाम करने के लिए कुछ निन्दात्मक परचे भी छपवाए जिनमें अधिकांशत: असत्य का सहारा लिया गया था। शास्त्री जी उससे न तो प्रभावित व उत्तेजित हुए और नहीं उस झूठ का प्रत्युत्तर ही दिया क्योंकि उन्हें विश्वास था कि असत्य तो कालान्तर में स्वयं विनष्ट हो जाता है, यदि उसे लगातार पानी देकर बढ़ने, फलने व फूलने न दिया जाय।

जिन लोगों ने शीतल मन्द व सुगन्धित बयार के समान शास्त्री जी के धारा प्रवाह प्रवचनों को सुना है, वे उन्हें कभी भी भुला न पाएंगे।

ऐसे व्यवहार कुशल व मृदुभाषी पं० प्रकाशवीर शास्त्री को हमारी विनम्र श्रद्धाञ्जलि।

— पं० गंगाप्रसाद विद्यार्थी
(आर्यसन्देश, 25-11-90)